परछाइयाँ

(महाभारत के गुमनाम योद्धाओं की अमर गाथा)

कथा संग्रह

लेखक:- नवीन कुमार “नवीन”

BlueRose ONE.com DIY
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Navin Kumar Navin 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com DIY
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7542-540-3

First Edition: February 2026

भूमिका

महाभारत-यह एक नाम मात्र नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म, नीति और युद्ध की एक अमूल्य गाथा है। संपूर्ण मानवता के लिए यह केवल एक महाकाव्य ही नहीं-अपितु अनंत ज्ञान का सागर है, जिसमें अनगिनत शिक्षाएं छुपी हैं। परंतु इस विराट युद्ध के मंच पर केवल कृष्ण, अर्जुन, भीम, द्रौपदी, कर्ण, दुर्योधन जैसे प्रसिद्ध पात्र ही नहीं थे, बल्कि ऐसे अनेक अनाम, कम विख्यात योद्धा, नारी पात्र और बालकवीर भी थे जिन्होंने अपनी "परछाई"को छोड़ कर युद्धभूमि में अद्‌भुत बलिदान दिया। समय के प्रवाह में ये वीरगाथाएं कहीं पीछे छूटती चली गईं, जैसे धुंध में लुप्त होती -"परछाइयाँ"।

मेरी यह रचना-"परछाइयाँ: महाभारत के गुमनाम योद्धाओं की अमर गाथा", (कथा संग्रह) उन्हीं वीर आत्माओं को समर्पित है। मेरा उद्देश्य आज की आधुनिक पीढ़ी को महाभारत के उन अनदेखे नायकों से परिचित कराना है, जिन्होंने अपने साहस, निष्ठा और त्याग से युद्ध की धूल में अमरता प्राप्त की। ये कहानी नहीं, बल्कि इतिहास के पन्नों में दबे अनगिनत सबक हैं, जो हर युवा को अपने चरित्र निर्माण और राष्ट्र निर्माण की प्रेरणा देते हैं।इस संग्रह को रचते समय मेरी सोच का मूल आधार था-महाभारत के इन महान व्यक्तित्वों का आदर, उनकी आत्मगाथा का सम्मान और उनका यथार्थ रूप में पुनर्जीवन।

मेरे भीतर इस रचना के प्रति एक व्यक्तिगत जुड़ाव भी रहा है,बचपन से ही मेरे आदरणीय दादाजी, स्व. रामकृपाल जी, जो एक समर्पित शिक्षक थे, ने मुझे धर्म, संस्कृति और साहित्य की गहराई से परिचित करवाया।मैं अपनी दादी-स्वर्गीय भागीरथी देवी द्वारा सुनाए गए रामायण और महाभारत की कथाओं के साथ बड़ा हुआ-उनके स्नेहिल शब्द, उनकी शिक्षाएँ मेरे विचारों की नींव बनीं। पिताजी श्री अखिलेश्वर एवं माताजी स्व

उर्मिला के मार्गदर्शन ने मेरे जीवन को अनुशासन और उद्देश्य की दिशा दी। साथ ही, इस साहित्यिक यात्रा में मेरी जीवनसंगिनी ख़ुशबू (सुनीता), पुत्र अभिषेक आकाश, एवं पुत्री अनुष्का वैष्णो, का अमूल्य सहयोग और प्रेरणा सदैव मेरे साथ रही है। उनका स्नेह और समर्थन मेरे लेखन के प्रति अटूट विश्वास का परिचायक है।

यह कथा संग्रह उन अनगिनत शौर्य गाथाओं का दस्तावेज है, जिनकी परछाइयाँ, महाभारत की रणभूमि में सदैव जीवित रहेंगी। मेरा विश्वास है कि यह संग्रह प्रत्येक पाठक के हृदय में एक नई ऊर्जा का संचार करेगा, भीतर छुपे वीरत्व का आभास कराएगा, और व्यक्तित्व निर्माण में एक प्रेरक साधन बनकर कार्य करेगा।

मैं आपको सादर आमंत्रित करता हूँ-इस कहानी संग्रह के माध्यम से महाभारत के उन गुमनाम योद्धाओं से रू-ब-रू होने के लिए । आइए- उन परछाइयों की गूँज सुनें, जिनसे इतिहास ने आज की पीढ़ी को अनेकों सीख दी हैं।

नवीन कुमार "नवीन "

प्रस्तावना

यह पुस्तक "परछाइयाँ" महाभारत के उन पात्रों की अनसुनी, अनकही और अक्सर गुमनाम कहानियों को सामने लाती है, जिन्हें मुख्य कथा में बहुत कम याद किया गया है.

लेखक नवीन कुमार नवीन ने अपनी संवेदनशील दृष्टि और शोधपूर्ण लेखन से महाभारत की विराट कथा को एक नए कोण से प्रस्तुत किया है, जो अत्यंत सराहनीय प्रयास है। महाभारत पर कुछ लिख पाने की इच्छा ही अपने आप में साहित्यिक साहस का प्रमाण है।नवीन से मेरा बहुत पुराना संबंध रहा है और उनके साथ अनेक सुखद स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। इसलिए मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि उन्होंने महाभारत जैसे प्राचीन और विराट महाकाव्य को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का साहसिक प्रयास किया है।

मेरा जन्म मुस्लिम परिवार में होने के कारण स्वाभाविक रूप से,प्रारंभिक शिक्षा इस्लामिक वातावरण में सम्पन्न हुई, किंतु रामायण और महाभारत की कथाओं से बहुत आरंभिक काल से ही परिचय रहा है। वास्तव में, मैं न केवल महाभारत की कथा से परिचित हूँ, बल्कि इसके विभिन्न पात्रों से भी गहरा निकटता का अनुभव करता हूँ। मेरे प्रारंभिक वर्षों में दूरदर्शन पर महाभारत का प्रसिद्ध धारावाहिक प्रसारित होता था, जिसे राही मासूम रज़ा ने अपने सशक्त संवादों से जीवंत कर दिया था। उस समय हर घर में टीवी नहीं होता था, इसलिए हम पड़ोसियों के घर जाकर उसके एपिसोड देखते थे और अनजाने में उसकी भव्यता और वैचारिक तत्वों को आत्मसात कर रहे होते थे। इन कथाओं का गहरा प्रभाव मेरे जीवन पर पड़ा है, जिसने मेरे वैचारिक और व्यवहारिक जीवन को भी आकार दिया। इस देश की मिट्टी में महाभारत की कथा रची-बसी है और यही हमारी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की धारा को भी निर्मित करती है।

महाभारत के उपेक्षित पात्रों पर लिखना एक अभिनव विचार है । इस रोचक और प्रेरक पुस्तक की प्रस्तावना लिखते हुए मुझे विशेष प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह केवल भीष्म, अर्जुन, कृष्ण या दुर्योधन जैसे प्रमुख पात्रों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि विकर्ण, बर्बरीक, शिखंडी, विदुर, कर्ण और अन्य स्त्री पात्रों की भी जीवंत झलक प्रस्तुत करती है। इन पात्रों की पीड़ा, संघर्ष और नैतिक दुविधाओं को लेखक ने सरल भाषा और मार्मिक शैली में उकेरा है। इससे पाठक को यह अनुभव होता है कि महाभारत केवल एक युद्धकथा नहीं, बल्कि जीवन के विविध पक्षों और मानवीय मूल्यों का अद्‌भुत दस्तावेज़ है।

भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और भावनात्मक है। प्रत्येक अध्याय एक नई रोशनी डालता है - उदाहरण के लिए, विकर्ण का प्रसंग केवल कुरुक्षेत्र के युद्ध तक सीमित नहीं, बल्कि न्याय और धर्म के प्रश्नों को भी उजागर करता है। इसी प्रकार शिखंडी और विदुर जैसे पात्रों की कहानियाँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक लगती हैं।

संक्षेप में, यह पुस्तक महाभारत प्रेमियों के लिए ही नहीं, बल्कि उन सभी पाठकों के लिए उपयोगी है जो, साहित्य और मानवीय मूल्यों को समझना चाहते हैं। "परछाइयाँ" महाभारत की परछाइयों को उजाले में लाने का एक सफल प्रयास है, जिसे अवश्य पढ़ा जाना चाहिए।

अंत में, मैं लेखक, नवीन कुमार नवीन को हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ कि उनकी यह कृति पाठकों को लंबे समय तक प्रेरित करती रहे और भविष्य में भी वे ऐसे ही सारगर्भित लेखन से हिंदी साहित्य को समृद्ध करें।

शाहिद परवेज़ ,

अपर सचिव,अल्पसंख्यक कल्याण विभाग ,बिहार सरकार.

विषय सूची

महाभारत के गुमनाम योद्धाओं की अमर गाथा.......................... 1

1. एकलव्य 2
2. घटोत्कच..........5
3. बर्बरीक (खाटू श्याम) 8
4. धृष्टद्‌युम्न 13
5. अश्वत्थामा.......... 17
6. शिखंडी 21
7. विकर्ण.......... 25
8. विदुर.......... 29
9. जयद्रथ 33
10. कंस.......... 36
11. जरासंध.......... 40
12. शिशुपाल 43
13. शकुनि 47
14. शल्य 50
15. कृपाचार्य.......... 54
16. सात्यकी (युयुधान).......... 57
17. कृतवर्मा.......... 61
18. दुःशासन.......... 63
19. कीचक.......... 66
20. रुक्मी.......... 70
21. तक्षक.......... 72

महाभारत के गुमनाम महिला चरित्रों की अमर गाथा 76

22. भानुमति 77
23. दु:शाला.. 81
24. सुभद्रा 84
25. उत्तरा.. 88

महाभारत के गुमनाम बालवीर योद्धाओं की अमर गाथा 91

26. इरावन 92
27. अनिरुद्ध 96
28. सुतसोम 100
29. दुर्योधन और कर्ण की मित्रता.. 103
30. यक्ष -युधिष्ठिर संवाद 105
31. समीक्षाएं.. 109

परछाइयाँ
(महाभारत के गुमनाम योद्धाओं की अमर गाथा)
<u>कथा संग्रह</u>

श्रृंखला का उद्देश्य:

महाभारत केवल अर्जुन, कृष्ण, भीम या कर्ण की गाथा नहीं है। इसके अनेक ऐसे योद्धा भी हैं जिन्होंने युद्धभूमि में वीरता दिखाई, त्याग किए, किन्तु इतिहास की रौशनी से ओझल रह गए।

"परछाइयां" उन महान योद्धाओं की कहानी है जो पृष्ठभूमि में रहकर भी युद्ध के निर्णायक मोड़ बने।

लेखक - नवीन कुमार "नवीन"

एकलव्य

घने जंगलों से घिरा हुआ था निषादराज हिरण्यधनु का राज्य। उन्हीं के घर जन्मा था-"एकलव्य"। जन्म से ही उसमें एक अद्भुत जिज्ञासा थी-तीरों से खेलना,यह उसे किसी और खेल से ज्यादा अच्छा लगता। बचपन में जब उसके मित्र,खिलौनों से खेलते-वह लकड़ी के धनुष से, मिट्टी के ढेर को निशाना बनाता। लोग कहते-"यह बालक साधारण नहीं, इसमें धनुर्धर बनने का स्वाभाविक गुण है।"

समय बीता। एकलव्य के मन में प्रबल इच्छा जागी कि वह धनुर्विद्या सीखे। और जब उसे ज्ञात हुआ कि गुरु द्रोणाचार्य हस्तिनापुर में राजकुमारों को शस्त्र विद्या सिखा रहे हैं, तो उसके हृदय में आग सी जल उठी। वह वहाँ पहुँचा।नम्र स्वर में उसने द्रोणाचार्य से निवेदन किया-"गुरुवर, मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। मैं भी धनुर्विद्या सीखना चाहता हूँ।"

द्रोण ने देखा-सामने खड़ा है एक निषाद पुत्र। राजवंश का नहीं, वनों में रहने वाला एक वन्य जाति का बालक। और द्रोण-उनका प्रण था, केवल क्षत्रियों और राजवंशीयों को ही शिक्षा देना,उन्होंने कहा-"वत्स, मैं तुझे शिष्य नहीं बना सकता। यह विद्या केवल राजकुमारों के लिए है।"उस क्षण एकलव्य की आँखों में आँसू तैर आए। लेकिन भीतर से उसकी आत्मा ने कहा-"नहीं, मैं हार नहीं मानूँगा।

जब दरवाज़े बंद हों, तो रास्ते खुद बनाने पड़ते हैं।वह लौट आया,लेकिन अपने हृदय में द्रोण को ही गुरु मान लिया। जंगल में मिट्टी की एक प्रतिमा बनाई और उसी के सामने अभ्यास करने लगा। दिन-रात वही साधना, वही तपस्या।

उसका कौशल ऐसा बढ़ा कि जंगल के पशु भी उसकी धनुर्विद्या के गवाह बने।

एक दिन, जब वह अभ्यास कर रहा था, तो पांडवों का कुत्ता,एकलव्य के पास गया और भौंकने लगा। अभ्यास में विघ्न डालने पर, एकलव्य ने कुत्ते के मुँह में सात तीर इस प्रकार भरे कि वह घायल हुए बिना ,चुप हो गया। कुत्ता पांडवों के पास वापस गया, और उन्होंने देखा कि उसके मुँह में तीर भरे हुए थे,परंतु रक्त का एक बूंद भी कहीं नहीं । यह देख पांडव आश्चर्यचकित हुए और द्रोणाचार्य से इस बारे में पूछा।अर्जुन के मन में प्रश्न उठा-"गुरु ने कहा था कि मुझसे श्रेष्ठ कोई नहीं होगा, तो यह कौन है?"

द्रोणाचार्य स्वयं आए और देखा-हाँ, यह वही निषाद पुत्र है, जिसने उनकी मिट्टी की प्रतिमा को गुरु मानकर साधना की है। द्रोण चकित रह गए। उन्होंने कहा-"यदि तू मुझे गुरु मानता है, तो गुरु-दक्षिणा दे।"

एकलव्य ने विनम्रता से कहा-"गुरुवर, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। बताइए, क्या चाहिए?"

द्रोण ने कठोर स्वर में कहा-"मुझे तेरे दाहिने हाथ का अंगूठा चाहिए।"क्षण भर को सन्नाटा छा गया। यह माँग असंभव थी-क्योंकि एक धनुर्धर का अंगूठा ही उसकी जान होता है। लेकिन एकलव्य ने बिना कुछ सोचे, मुस्कुराते हुए कहा-"गुरु आज्ञा से बढ़कर मेरे लिए कुछ नहीं।"

उसने अपना अंगूठा काटकर द्रोण के चरणों में रख दिया। इतिहास में यह प्रसंग "अंगूठा दान" के नाम से अमर हो गया।

"सच्ची निष्ठा वहाँ नहीं होती,जहाँ प्रतिफल मिले,सच्ची निष्ठा वहाँ होती है-जहाँ सब कुछ खोकर भी श्रद्धा बनी रहे।"

अंगूठा दान के बाद भी एकलव्य ने साधना नहीं छोड़ी। उसने अपने शेष उँगलियों से धनुष साधना शुरू किया । यद्यपि उसकी गति पहले जैसी नहीं रही, पर उसकी लगन ने उसे पुनः अद्वितीय बना दिया।

महाभारत में उसका उल्लेख बार-बार हुआ है। जब जरासंध का वध हुआ और मथुरा पर खतरे मंडराए, तब कृष्ण ने एकलव्य की वीरता को पहचाना। वह निषादराज की सेना का महान धनुर्धर बना। लेकिन कृष्ण और यदुवंशी राजाओं से उसका संबंध कई बार टकराव का रहा।

कृष्ण ने देखा कि एकलव्य की प्रतिभा यदि नियंत्रित न की गई तो यह भविष्य में यदुवंश के लिए संकट बन सकता है। यही कारण था कि अंततः यदुवंशी संघर्षों में एकलव्य का वध हुआ। कई कथाओं में कहा गया है कि वह श्रीकृष्ण के हाथों ही मारा गया-"कभी-कभी प्रतिभा का सबसे बड़ा अपराध यही होता है कि वह समय से आगे होती है।"

मृत्यु के समय भी एकलव्य के मुख पर संतोष था। वह बोला-"मैंने गुरु-दक्षिणा दी, मैंने श्रद्धा निभाई। मेरा नाम शायद इतिहास में कहीं खो जाए, पर मेरी आस्था कभी नहीं मिटेगी।"

"वह हारकर भी जीत गया, क्योंकि उसने अपने गुरु को कभी नहीं छोड़ा।"

सीख:एकलव्य की कथा,हमें यह सीख देती है कि अवसर हर किसी को नहीं मिलता, लेकिन जो स्वयं अवसर गढ़ लेता है, वही इतिहास बनाता है।

घटोत्कच

घटोत्कच, भीम और हिडिंबा का पुत्र-वो वह योद्धा था जो रात के अंधेरे में जंग का उजाला था। *भीम ने हिडिंबा से विवाह करके यह साबित किया था कि प्रेम और सम्मान किसी जाति, रूप या परंपरा की सीमा में बंधा नहीं होता।* और इसी मिलन से जन्मा घटोत्कच, आधा मानव और आधा राक्षस, जिसकी शक्ति और पराक्रम का मुकाबला करना लगभग असंभव था।उसका नाम जब भी महाभारत के पन्नों में आता है, एक मायावी शक्ति, रौद्र रूप और बलिदान की परछाईं हमारे मन में उभरती है।उसकी कथा केवल युद्ध की नहीं, बल्कि उस त्याग और जिम्मेदारी की भी है-जो उसे अपने रक्त में विरासत के रूप में मिली थी।

बचपन से ही घटोत्कच में,असाधारण बल और साहस के लक्षण दिखाई देते थे। उसका शरीर विशाल और प्रभावशाली था। युद्ध कौशल, मायावी शक्ति और साहस उसे अपनी माता और पिता, दोनों से प्राप्त हुआ

था। हिडिंबा ने उसमें राक्षसी तेज का संचार किया तो भीम ने अपने पांडव वंश का शौर्य दिया। इसी कारण घटोत्कच का नाम सुनकर ही शत्रु विचलित हो जाते थे।

महाभारत के युद्ध से पहले भी घटोत्कच ने कई अवसरों पर अपनी वीरता का परिचय दिया। जब पांडव वनवास में थे, तब घटोत्कच उनकी रक्षा के लिए हमेशा तत्पर रहता था। वह न केवल युद्ध में दक्ष था, बल्कि अपने चतुर स्वभाव और हास्यपूर्ण बातों से वातावरण को हल्का भी कर देता था। पांडव उसे अत्यंत प्रिय मानते थे।

युद्ध का समय आया-कुरुक्षेत्र की भूमि पर जब दोनों पक्ष आमने-सामने खड़े हुए, तब कौरवों की सेना का आकार और शक्ति देखकर पांडव चिंतित थे। ऐसे में घटोत्कच अपने विशाल शरीर और अद्भुत युद्धकला के साथ रणभूमि में उतरा। उसकी उपस्थिति ही पांडवों के लिए आत्मविश्वास का स्रोत थी। वह रात के समय युद्ध में और भी अधिक प्रबल हो जाता था, क्योंकि उसे मायावी शक्तियों का वरदान प्राप्त था।

जब-जब कौरवों की सेना बढ़त बनाने लगती, घटोत्कच अपने पराक्रम से उन्हें पीछे धकेल देता। उसका रथ नहीं, बल्कि पूरा आकाश उसकी गति के साथ थरथराता। उसके वारों से हाथी गिरते, रथ टूटते और योद्धा भयभीत होकर पीछे हट जाते। दुर्योधन, कर्ण और शल्य जैसे योद्धाओं ने भी कई बार उसे रोकने का प्रयास किया, लेकिन घटोत्कच की मायावी शक्ति,उन्हें थका देती थी।

कुरुक्षेत्र युद्ध में सबसे महत्वपूर्ण प्रसंग तब आया जब कर्ण ने अपने पास मौजूद दिव्य अस्त्र-वसवी शक्ति का प्रयोग किया। यह अस्त्र इंद्रदेव से प्राप्त हुआ था और अपराजेय था, लेकिन इसकी एक शर्त थी-यह केवल एक बार प्रयोग किया जा सकता था-कर्ण ने इसे अर्जुन को मारने के लिए संभाल कर रखा था। किंतु जब घटोत्कच ने अपनी शक्ति से कौरव सेना में हाहाकार मचा दिया, तो दुर्योधन ने कर्ण से कहा कि यदि अभी इस अस्त्र का प्रयोग नहीं किया गया, तो हमारी सेना का विनाश आज ही निश्चित है।

कर्ण के सामने कठिन निर्णय था। वह जानता था कि यह अस्त्र यदि अर्जुन पर चलता तो पांडवों का पक्ष टूट जाता। परंतु घटोत्कच का प्रचंड रूप देखकर उसने वसवी शक्ति का प्रयोग उसी पर कर दिया । "कर्ण ने अर्जुन को मारने वाली शक्ति घटोत्कच पर चला दी, यही पांडवों की विजय की असली वजह बनी।"अस्त्र के प्रहार से घटोत्कच धराशायी हो गया, किंतु मरते-मरते भी उसने अपनी विशालकाय देह को इतना बड़ा कर लिया कि उसके गिरने से अनगिनत कौरव सैनिक कुचलकर मारे गए।

इस प्रकार-"घटोत्कच ने मृत्यु को भी हथियार बना लिया और गिरते-गिरते हजारों शत्रुओं को कुचल दिया-"उसका यह बलिदान केवल एक मृत्यु नहीं, बल्कि पांडवों के लिए जीवनदायिनी आहुति थी", उसने अपनी जान देकर अर्जुन को बचा लिया। यदि कर्ण ने वसवी शक्ति का प्रयोग अर्जुन पर किया होता, तो महाभारत का परिणाम बदल सकता था। इसीलिए घटोत्कच का बलिदान युद्ध के इतिहास में अमर हो गया।

युद्ध के बाद जब पांडवों ने घटोत्कच का स्मरण किया, तो सभी की आंखें नम हो गईं। भीम ने अपने पुत्र को छाती से लगाकर आंसू बहाए,उन्होंने कहा-"तू केवल मेरा पुत्र नहीं था घटोत्कच, तू पूरे पांडव वंश का रक्षक था। तेरे बलिदान ने हमें विजयी बनाया है।"इस प्रकार,पुत्र का बलिदान-पिता के आंसुओं में नहीं, बल्कि इतिहास के पन्नों में अमर हो गया।

सीखः-घटोत्कच की कथा हमें सिखाती है कि सच्चा योद्धा वही है, जो अपने जीवन से बड़ा कर्तव्य को समझता है। उसने मृत्यु को भी अपने शौर्य का हथियार बना दिया। उसकी हंसी, उसका उत्साह और उसका बलिदान महाभारत की सबसे मार्मिक गाथाओं में से एक है।घटोत्कच की गाथा बलिदान और वीरता का वह दीपक है, जो आज भी मानवता को कर्तव्य और त्याग का मार्ग दिखाता है।

बर्बरीक(खाटू श्याम)

महाभारत के महानायक भीम का एक पुत्र था -घटोत्कच।वह राक्षसी हिडिंबा से उत्पन्न हुआ था, और आकाशगामी शक्ति, अद्भुत बल और मायावी युद्ध में निपुण था।

घटोत्कच ने नागकन्या मोरवी से विवाह किया और उनके घर जन्मा एक ऐसा बालक, जिसकी गाथा आने वाले समय में अमर होनी थी- "बर्बरीक"।

बाल्यकाल से ही बर्बरीक में असाधारण तेज दिखता था।

वह साधारण बच्चों की तरह खेलता नहीं, बल्कि लकड़ी की धनुष-बाण बनाकर आकाश की ओर साधता,उसकी आँखों में एक दिव्य चमक थी, मानो युद्धकला उसके रक्त में बह रही हो-"जब जन्म ही वीरता के लिए हो, तो जीवन साधारण कैसे हो सकता है।"

घटोत्कच ने अपने पुत्र को युद्ध के सारे कौशल सिखाए।वह बल में तो पिता जैसा था, पर मन से और भी धैर्यवान और विवेकशील भी,लेकिन बर्बरीक-केवल पिता से युद्ध ही नहीं सीखा-उसका हृदय भक्ति से भी भरा था।

किशोरावस्था में उसने भगवान शिव की घोर तपस्या की-वनों में, नदी किनारे, और कभी बर्फ की गुफाओं में-वह घंटों समाधि में बैठा रहता।

तपस्या से प्रसन्न होकर शिव प्रकट हुए और बोले-"कहो वत्स, क्या चाहिए तुम्हें?"

बर्बरीक ने कहा-मुझे ऐसा अस्त्र दीजिए प्रभु , जिससे मैं धर्म की रक्षा कर सकूँ।"

शिव ने तीन अमोघ बाण और एक दिव्य धनुष दिया।ये तीन बाण अद्वितीय थे-

1. पहला बाण लक्ष्य चिह्नित करता।

2. दूसरा सारे लक्ष्यों को बाँधता।

3. तीसरा उन्हें नष्ट कर देता।

इसलिए बर्बरीक "तीन-बाणधारी" कहलाये - "शक्ति का मूल्य उसकी संख्या से नहीं, उसकी सार्थकता से होता है।"

जब महाभारत का महान युद्ध आरंभ होने वाला था, बर्बरीक का मन भी युद्धभूमि की ओर खिंच गया।उसने निश्चय किया कि वह पांडवों की ओर से लड़ेगा, क्योंकि वह उनका वंशज था।

उनका रथ तैयार हुआ-काले घोड़े, चमचमाता धनुष, और तरकश में केवल "तीन बाण"।लोग आश्चर्य से हँसते-"तीन बाणों से कौन युद्ध जीतता है?"

बर्बरीक मुस्कुराते और कहते -"एक बाण मेरे लिए पर्याप्त है,यदि पहला चूक जाए तो दूसरा है, और यदि दूसरा भी कम पड़े तो तीसरा सम्पूर्ण ब्रह्मांड के लिए काफी है।"

युद्धभूमि की ओर जाते हुए उनकी भेंट एक अजनबी ब्राह्मण से हुई- वह ब्राह्मण वास्तव में श्रीकृष्ण थे।

कृष्ण ने पूछा-"वीर, कहाँ जा रहे हो?"

बर्बरीक ने उत्तर दिया-"पांडवों की ओर से युद्ध लड़ने।"

कृष्ण ने हँसते हुए कहा-"पर तुम्हारे पास तो केवल तीन बाण हैं। क्या इनसे भी युद्ध संभव है?"

बर्बरीक ने धनुष उठाया और कहा-"इन तीन बाणों से मैं सम्पूर्ण ब्रह्मांड को बाँध सकता हूँ।"

कृष्ण ने उसकी परीक्षा ली,उन्होंने पीपल का पेड़ दिखाकर कहा- "क्या इन सारे पत्तों को एक ही बाण से भेद सकते हो?"

बर्बरीक ने बाण छोड़ा-बाण घूम-घूमकर सारे पत्तों को भेदने लगा।

कृष्ण ने एक पत्ता अपने पैर तले छिपा लिया।बाण वहीं आकर ठहर गया और कृष्ण के पैर को भेदने को तत्पर हुआ।कृष्ण ने पैर हटा लिया, और बाण ने छिपा पत्ता भी भेद डाला-कृष्ण विस्मित हो गए।

कृष्ण ने पूछा-"तुम किसकी ओर से लड़ोगे?"

बर्बरीक ने सहजता से कहा-"मैं सदैव कमजोर का साथ दूँगा।जहाँ भी पलड़ा हल्का होगा, मैं उसी ओर खड़ा हो जाऊँगा।"

कृष्ण समझ गए कि यह योद्धा युद्ध में उतरा तो युद्ध कभी समाप्त नहीं होगा-कभी पांडव कमजोर होंगे, तो कभी कौरव,और बर्बरीक हर बार पक्ष बदल देगा।इससे धर्म की जीत असंभव हो जाएगी।

कृष्ण ने कहा-"वीर, क्या तुम ब्राह्मण को दान दोगे?"

बर्बरीक ने दृढ़ता से कहा-“हाँ, मैंने माँ से वचन लिया है कि हर याचक को दान दूँगा।

कृष्ण ने कहा-“तो मुझे तुम्हारा सिर चाहिए।”

क्षणभर के लिए मौन छा गया-लेकिन बर्बरीक ने बिना हिचक अपना सिर काटकर,कृष्ण को अर्पित कर दिया-“सच्चा वीर वही है,जो मृत्यु को दान बना दे।”

कृष्ण ने उसका सिर,वरदान स्वरूप जीवित रखा-बर्बरीक का मस्तक युद्धभूमि के ऊँचे टीले पर स्थापित किया गया।

वहीं से उसने पूरे अठारह दिन का युद्ध देखा,वे एकमात्र निष्पक्ष साक्षी थे-उन्होंने भीम का गदा प्रहार देखा, अर्जुन का गांडीव गर्जन देखा, अभिमन्यु का शौर्य देखा, और द्रोण का क्रोध भी, कैसे भीष्म गिरे, कैसे कर्ण के रथ का पहिया धँसा, और अंत में दुर्योधन का पराजय हुआ।

युद्ध समाप्त हुआ।

पांडवों में विवाद उठा-“विजय किसके कारण हुई?”

भीम बोले -“मेरी गदा से।”

अर्जुन बोले-“मेरे गांडीव से।”सहदेव और नकुल ने भी अपने-अपने तर्क दिए।

कृष्ण मुस्कराए और बोले-“आओ, युद्ध का साक्षी-निर्णय देगा।”

वे सब बर्बरीक के सिर के पास पहुँचे।पांडवों ने प्रश्न किया-“तुम्हारी दृष्टि में इस विजय का श्रेय किसे जाता है?”

बर्बरीक का उत्तर था-“मैंने रणभूमि में केवल कृष्ण को हर ओर देखा-कभी वे अर्जुन के सारथी थे, कभी भीम की शक्ति, कभी युधिष्ठिर की बुद्धि, और कभी द्रौपदी की पुकार का उत्तर-“अठारह दिन तक युद्ध का असली संचालक केवल श्री कृष्ण थे।”

सब मौन हो गए-“जहाँ धर्म है, वहाँ कृष्ण हैं; और जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ विजय है।”

युद्ध के बाद बर्बरीक का मस्तक सम्मानपूर्वक दफनाया गया।

समय बीता और वह स्थान राजस्थान का खाटूधाम कहलाया,आज वहाँ खाटू श्याम जी के रूप में बर्बरीक की पूजा होती है।

भक्त मानते हैं कि आज भी “खाटू श्याम”, सबकी पुकार सुनते हैं।

सीख:-असली वीरता केवल लड़ाई में नहीं, त्याग में है।निष्पक्षता सबसे बड़ा धर्म है, पर धर्म की जीत के लिए विवेक भी ज़रूरी है।शक्ति तभी सार्थक है जब उसका प्रयोग नीति और धर्म के लिए हो।

“सिर कटकर भी जिसने युद्ध देखा, वही युद्ध का सच्चा साक्षी कहलाया।”

धृष्टद्युम्न

धृष्टद्‌युम्न की कहानी शुरू होती है-एक अद्‌भुत यज्ञ से। राजा द्रुपद, जिनके हृदय में द्रोणाचार्य के प्रति गहरी पीड़ा थी, उस पीड़ा को मिटाने के लिए उन्होंने एक संकल्प लिया। मित्रता के रिश्ते में कभी बंधे रहे द्रुपद और द्रोण, जब अपमान और अहंकार की दीवार में बंट गए, तो वैर की ज्वाला इतनी भड़की कि द्रुपद ने महर्षियों की सहायता से एक ऐसा यज्ञ किया,जिससे उन्हें एक ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ-जो द्रोणाचार्य के अंत का कारण बना। यज्ञ की अग्नि से प्रकट हुआ,एक तेजस्वी बालक-"धृष्टद्‌युम्न"। उसके जन्म के साथ ही घोषणा हुई कि यही भविष्य में द्रोणाचार्य का वध करेगा। यह घोषणा धृष्टद्‌युम्न की नियति थी, और नियति से बड़ा कोई नहीं होता।

धृष्टद्युम्न बचपन से ही असाधारण थे। शिक्षा के लिए जब उन्हें भेजा गया, तब विडंबना यह थी कि उनके गुरु स्वयं द्रोणाचार्य बने। यह कैसा खेल था समय का-जिस शिष्य का जन्म ही गुरु की मृत्यु के लिए हुआ था, वही शिष्य उनके चरणों में बैठकर शस्त्र और शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर रहा था। द्रोणाचार्य जानते थे कि धृष्टद्युम्न का जन्म उनके विनाश का संकेत है, परंतु शिक्षक धर्म का पालन करना ही उनके लिए सर्वोच्च कर्तव्य था। उन्होंने धृष्टद्युम्न को वही युद्ध कौशल, वही शस्त्रविद्या सिखाई, जिसने आगे चलकर उनके अपने जीवन की डोर को काट दिया ।

महाभारत का युद्ध जब शुरू हुआ-धृष्टद्युम्न को पांडव सेना का सेनापति चुना गया। यह निर्णय यथार्थ भी था और रणनीति भी, क्योंकि जो जन्म से ही द्रोणाचार्य का विरोधी बना था, वही कौरवों के महान आचार्य के विरुद्ध मोर्चा संभाल सकता था। युद्धभूमि में धृष्टद्युम्न का रथ सदा अग्रिम पंक्ति में रहता। उनकी गर्जना सुनकर अनेक योद्धाओं का साहस टूट जाता।

धृष्टद्युम्न ने भीष्म के सामने अपनी वीरता दिखाई, कर्ण के सामने जूझे, और कई बार दुर्योधन की सेना को परास्त किया। लेकिन उनके जीवन का चरम बिंदु तब आया जब द्रोणाचार्य को रोकने की योजना बनाई गई।

युद्धभूमि में शंखनाद गूँज रहा था। रक्त और धूल से भरी भूमि पर द्रोणाचार्य अब भी अजेय प्रतीत हो रहे थे । उनके सामने कोई योद्धा टिक नहीं पा रहा था। उनके सामने आने वाला हर योद्धा, क्षणभर में परास्त हो जाता।

तब पांडवों ने एक युक्ति बनाई।भीम द्वारा कौरवों का एक हाथी को मार गिराया गया और युधिष्ठिर से कहा गया कि वे अर्धसत्य बोलें- "अश्वत्थामा मारा गया।"

युधिष्ठिर ने भारी मन से कहा-"अश्वत्थामा हतः इति, नरः वा कुंजरो वा।" (अश्वत्थामा मारा गया, लेकिन यह नर है या हाथी, यह निश्चित नहीं)। द्रोण का मन हिल गया।पुत्र की मृत्यु समझ उनकी आँखें अश्रु से भर आईं।

युधिष्ठिर के बोले हुए वचन पर उन्हें अटूट विश्वास था, उन्होंने धीरे से अपना धनुष रख दिया ।

द्रोणाचार्य: "यदि मेरा पुत्र नहीं रहा... तो फिर इस जीवन का अर्थ क्या है? अब शस्त्र उठाने का कारण भी नहीं रहा।"वे रथ पर बैठ ध्यान में लीन हो गए। उसी समय धृष्टद्युम्न रथ से कूदते हुए उनके पास पहुँचे। उनके नेत्र अंगारों की तरह धधक रहे थे।

धृष्टद्युम्न: "आचार्य, आज वही क्षण है जिसके लिए मैं जन्मा हूँ। आपने मुझे युद्ध की शिक्षा दी, और आज मैं उसी शिक्षा से आपको परास्त करने आया हूँ।"

द्रोणाचार्य (शांत स्वर में): "धृष्टद्युम्न, मुझे पता था... तुम्हारा जन्म ही मेरे अंत के लिए हुआ है। मैंने तुम्हें शस्त्र चलाना इसलिए सिखाया था ताकि नियति अपनी राह पा सके। यदि यही तुम्हारा धर्म है, तो आओ, पूर्ण करो।"

धृष्टद्युम्न क्षणभर के लिए ठिठक गए। गुरु के शांत और निर्भीक शब्द उनके हृदय को विचलित कर रहे थे लेकिन पिता द्रुपद का अपमान, यज्ञ का संकल्प और जन्म का उद्देश्य उन्हें पीछे हटने नहीं दे रहा था।

धृष्टद्युम्न (दृढ़ स्वर में): "क्षमा करें आचार्य, मैं व्यक्तिगत वैर से नहीं, बल्कि नियति से बंधा हूँ। यदि मैं पीछे हट गया तो मेरा जन्म ही व्यर्थ हो जाएगा।"उन्होंने तलवार उठाई और आचार्य के ऊपर प्रहार कर दिया। द्रोणाचार्य स्थिर बैठे रहे, मानो वे स्वयं मृत्यु को आमंत्रित कर रहे हों। तलवार का वार गिरा, और महाभारत का एक और अध्याय रक्त से लिखा गया। युद्धभूमि गवाह बनी उस क्षण की, जब एक शिष्य ने अपने गुरु का वध किया।युद्धभूमि में चारों ओर निस्तब्धता छा गई। कहीं से एक स्वर उठा-"गुरु अपने शिष्य से हारे, लेकिन वास्तव में यह हार नहीं, नियति की जीत थी।"

कौरव पक्ष के हृदय में यह घटना गहरी चोट बनकर बैठ गई। विशेषकर अश्वत्थामा के लिए यह अपमान असह्य था। द्रोणाचार्य के पुत्र ने प्रतिज्ञा ली कि धृष्टद्युम्न को वह किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ेगा। युद्ध

समाप्ति की ओर था, पांडव विजयी होने लगे थे, लेकिन रात के अंधेरे में अश्वत्थामा ने नींद में सोए पांडव पक्ष के कई योद्धाओं का संहार किया। उसी समय उसने धृष्टद्युम्न को भी पकड़ लिया। क्रोध से कांपते हुए अश्वत्थामा ने उसे घसीटा और निर्दयता से उसे मारंने लगा, धृष्टद्युम्न ने अश्वत्थामा से कहा की-तलवार से मेरा सर काट डालो,लेकिन अश्वत्थामा ने उत्तर दिया- तुम्हारा कृत्य, वीरगति प्राप्त होने योग्य नहीं है और अश्वत्थामा ने पीट-पीट कर ही,उसका वध कर दिया। यह मृत्यु, शौर्य की भूमि पर नहीं, बल्कि प्रतिशोध की आग में हुई। धृष्टद्युम्न की सांसें वहीं थम गईं।

धृष्टद्युम्न का जीवन एक प्रतीक है-नियति चाहे कितनी भी टेढ़ी क्यों न हो, उससे बचा नहीं जा सकता। वह यज्ञवेदी से उत्पन्न हुए और अपने जन्म के कारण को पूरा करके ही संसार से विदा हुए। उनका जीवन यह सिखाता है कि वीरता केवल शस्त्र चलाने में नहीं है, बल्कि नियति को स्वीकार करने और उसके मार्ग पर चलने में भी है।युद्धभूमि की रेत पर जब उनका रक्त बह रहा था, तब आसमान में मानो इतिहास लिख रहा था-"जो यज्ञ से जन्मा, वह यज्ञ की पूर्णता के साथ ही समाप्त हुआ।"

सीखः-धृष्टद्युम्न यह सिखाते हैं कि शिक्षक और शिष्य का संबंध कितना गहरा और जटिल हो सकता है। वे यह भी याद दिलाते हैं कि अधूरे सत्य से बड़ी कोई चोट नहीं होती। युधिष्ठिर का अर्धसत्य, द्रोणाचार्य का त्याग, और धृष्टद्युम्न का प्रहार-तीनों मिलकर युद्ध का सबसे करुण अध्याय बन गए।और अंततः, धृष्टद्युम्न की मृत्यु यह सिखाती है कि जो प्रतिशोध से जन्मता है, उसकी परिणति प्रतिशोध में ही होती है। वीरता का मार्ग कठिन है, लेकिन नियति का मार्ग उससे भी कठोर।

अश्वत्थामा

द्रोणाचार्य की पत्नी-कृपी के गर्भ से जन्मे अश्वत्थामा, महर्षि भारद्वाज के पौत्र और कृपाचार्य के भांजे थे। कहा जाता है कि उनके जन्म के समय उनके माथे पर एक दिव्य मणि थी, जो उन्हें अजेयता और किसी भी प्रकार का भय रहित जीवन, प्रदान करती थी। शिशु का पहला रोना-साधारण नहीं था,वह शेर की गर्जना के समान गूँज उठा। तभी से यह स्पष्ट हो गया था कि यह बालक केवल सामान्य जीवन के लिए नहीं जन्मा है।

गुरु द्रोण के घर में पलते हुए अश्वत्थामा को विशेष दुलार मिला। द्रोणाचार्य भले ही दरिद्रता से घिरे थे, लेकिन पुत्र के प्रति उनके मन में अथाह स्नेह था। कृपाचार्य भी उसे अपनी संतान की तरह मानते। बचपन से ही अश्वत्थामा धनुर्विद्या, शस्त्र-विद्या और युद्ध की सारी कलाएँ सीखने लगा। उसमें अपार पराक्रम था और जन्मजात योद्धा का तेज उसके हर कदम में झलकता था।

कौरव-पांडव दोनों ही उसके मित्र बने, परंतु दुर्योधन के साथ उसकी निकटता सबसे अधिक थी। दुर्योधन ने अश्वत्थामा को केवल मित्र नहीं,

बल्कि अपना सहारा मान लिया। दोनों के बीच गहरी आत्मीयता रही। अश्वत्थामा जानता था कि पांडव धर्म की ओर हैं, लेकिन उसके लिए दुर्योधन की मित्रता धर्म से भी ऊपर थी।

महाभारत का युद्ध प्रारंभ हुआ तो अश्वत्थामा कौरव सेना का प्रमुख योद्धा बना। वह हर रणभूमि में अपने पराक्रम से चमत्कार कर देता। भीम, सात्यकि, द्रुपद, शिखंडी जैसे कई योद्धाओं से उसका सामना हुआ। यद्यपि वह पांडवों को पराजित नहीं कर पाया, लेकिन उसकी वीरता ने उन्हें भयभीत अवश्य किया। युद्धभूमि में उसका नाम सुनते ही सैनिक काँप उठते थे।

द्रोणाचार्य के हत्या का दिन आया। युधिष्ठिर के मुख से अर्धसत्य निकला-"अश्वत्थामा हतः..."। पिता का वध देखकर अश्वत्थामा का मन प्रतिशोध की ज्वाला से भर उठा। द्रोण के शव के पास खड़े होकर उसने आकाश की ओर देखा और बोला-"पिता, आपके रक्त का बदला मेरे जीवन का एकमात्र धर्म होगा"।वह धृष्टद्युम्न को ढूँढता हुआ रणभूमि में आया। तब दोनों में तीखी वार्ता हुई।

अश्वत्थामा (क्रोध से): "धृष्टद्युम्न, तूने छल से मेरे पिता को मारा। अब मैं तुझे उसी धरती पर गिराऊँगा, जहाँ तूने उनका रक्त बहाया।"

धृष्टद्युम्न (अडिग): "अश्वत्थामा, तेरे पिता,मेरे जन्म का कारण बने थे। नियति ने मुझे उनके अंत के लिए पैदा किया था। मैंने केवल अपना धर्म निभाया।"

अश्वत्थामा (गर्जना): "धर्म के नाम पर अधर्म,आज तेरा अंत होगा।"

रात्रि का समय आया। युद्ध विराम था, पर अश्वत्थामा की आँखों में नींद नहीं थी।

अश्वत्थामा, महाकाल की शरण में गया और वह उस रात में अजेय होने का वरदान प्राप्त कर चुका था। उस रात, वह महाकाल के रूप में युद्धभूमि में उतरा।

अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न को निर्दयता से पीट-पीट कर मार डाला। उसके हृदय में पिता का प्रतिशोध शांत हुआ, लेकिन भीतर की आग और बढ़ गई।नींद में सोए पांडवों के पुत्र-प्रतीविंध्य, सुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानिक, श्रुतसेन, एवं शिखंडी आदि सभी की निर्मम हत्या कर दी। युद्ध के नियमों के विपरीत, निर्दोष और निहत्थे योद्धाओं की हत्या ने महाभारत की भूमि को रक्त से रंग दिया। वह विजय का अनुभव नहीं था, बल्कि विनाश का भयावह नृत्य था।

सुबह जब द्रौपदी ने अपने पुत्रों के शव देखे, तो उसका हृदय चीत्कार से भर उठा। उसने भीम और पांडवों से कहा-"जिसने मेरे पुत्रों को नींद में मारा, वह जीवित नहीं रहना चाहिए। भीम,यदि तेरे हाथों में बल है, तो उसे घसीटकर लाओ।"

उसने कृष्ण और अर्जुन से कहा-"यदि मेरे पुत्रों की हत्या का बदला न लिया गया, तो यह युद्ध अधूरा रहेगा।"

"जब प्रतिशोध आँखों पर छा जाए, तो धर्म और अधर्म का अंतर मिट जाता है।"

कृष्ण ने अर्जुन को अश्वत्थामा के पीछे जाने का आदेश दिया। अर्जुन ने अश्वत्थामा का पीछा किया। घमासान युद्ध हुआ, और जब अर्जुन उस पर हावी होने लगे, तो भयभीत अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र का आह्वान कर दिया। अर्जुन ने भी उसका प्रत्युत्तर ब्रह्मास्त्र से दिया। दोनों दिव्यास्त्र आमने-सामने आए और संपूर्ण सृष्टि हिलने लगी। तभी महर्षि व्यास और नारद प्रकट हुए और दोनों को ब्रह्मास्त्र वापस लेने की आज्ञा दी। अर्जुन ने तो आज्ञा मानकर अपना अस्त्र वापस ले लिया, परंतु अश्वत्थामा ने अपनी घृणा और प्रतिशोध में अंधा होकर ब्रह्मास्त्र को उत्तरा के गर्भ की ओर मोड़ दिया, ताकि पांडव वंश का अंत हो सके।

"अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा, अर्जुन ने उसे वापस लिया-यही अंतर धर्म और अधर्म के मार्ग का है।"

उस घड़ी संपूर्ण पांडव परिवार व्याकुल हो उठा। लेकिन भगवान कृष्ण ने गर्भ में पल रहे बालक-परीक्षित-की रक्षा की। वे स्वयं गर्भ में प्रवेश कर अजन्मे शिशु को ब्रह्मास्त्र की ज्वाला से सुरक्षित कर लाए। अश्वत्थामा का यह पाप अक्षम्य था। उससे उसका दिव्य मणि निकाल ली गई , जो उसके मस्तक में जड़ा था और उसे अपराजेय बनाता था। मणि छिन जाने पर अश्वत्थामा निराश, पराजित और शापित-सा हो गया। इस मणि के छिनते ही वह साधारण मनुष्य की भाँति हो गया, और उसे शाप मिला कि वह युगों-युगों तक पृथ्वी पर भटकता रहेगा।उसे जीवन भर पृथ्वी पर भटकने का दंड मिला।

अश्वत्थामा का अंत मृत्यु से नहीं, बल्कि अमर पीड़ा से हुआ-"वह जीवित रहकर भी मृतक हो गया, और मृतक रहकर भी जीवित। यह नियति का सबसे कठोर दंड था।"

आज भी कहा जाता है कि अश्वत्थामा पृथ्वी पर भटकते हैं, अपने पाप और प्रतिशोध के बोझ तले।अश्वत्थामा की कथा एक ऐसी धारा है जो महाभारत में न केवल वीरता और क्रूरता, बल्कि अधूरे प्रतिशोध और अमर पीड़ा का भी प्रतीक है। वह जन्म से ही असाधारण था, किंतु नियति ने उसे उस राह पर ला खड़ा किया, जहाँ वीरता और पाप का अंतर धुंधला पड़ गया।

सीख:यह कथा हमें सिखाती है कि प्रतिशोध की ज्वाला कभी बुझती नहीं, वह केवल जीवन को राख बना देती है।वीरता केवल शत्रु को मारने में नहीं, बल्कि धैर्य और धर्म को निभाने में है। अश्वत्थामा महान योद्धा था, किंतु उसके पाप ने उसकी वीरता को ढक लिया और उसे एक अमर किंतु शापित छाया बना दिया।

शिखंडी

हिमालय की वादियों में एक राजकुमारी जन्मी थी-अंबा। सुंदरता, दृढ़ता और आत्मसम्मान की प्रतिमूर्ति। उसका जीवन एक साधारण राजकुमारी की तरह शुरू हुआ था, लेकिन नियति ने उसके कदमों के साथ खेल खेलना तय कर लिया था।

काशी नरेश की तीन पुत्रियाँ-अंबा, अंबिका और अंबालिका-स्वयंवर में अपना वर चुनने के लिए तैयार थीं। किंतु तभी आकाश गूँज उठा, जब भीष्म पितामह अपने रथ पर वहाँ पहुँचे, उन्होंने अकेले ही सब राजाओं को चुनौती दी और तीनों राजकुमारियों को बलपूर्वक उठाकर हस्तिनापुर ले आए, ताकि वे हस्तिनापुर के युवराज विचित्रवीर्य की पत्नियाँ बन सकें।

भीष्म ने यह सब केवल कौरव वंश के भविष्य और राज्य की स्थिरता के लिए किया था, व्यक्तिगत इच्छा से नहीं। किंतु जब यह प्रकट हुआ कि अंबा का मन तो पहले से ही शाल्व नरेश में बसा है, तब भीष्म ने धर्म की मर्यादा को समझा। उन्होंने अंबा को आदर के साथ विदा कर दिया और कहा-"तुम्हें वही वर मिलना चाहिए, जिसे तुमने अपने हृदय से चुना है। भीष्म कभी स्त्री की स्वतंत्रता का अपमान नहीं कर सकते।"

भीष्म, जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था, अंबा को शाल्व के पास भेजते हैं। लेकिन शाल्व ने उसे ठुकरा दिया। वह कहता है, "तुम्हें भीष्म ले आए, तुम पराजय की छाया लेकर आई हो।" इस तिरस्कार ने अंबा के भीतर आग जला दी। वह लौट आई हस्तिनापुर, और भीष्म के सामने खड़ी होकर बोली-"तुमने मेरा जीवन बर्बाद किया है। मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि एक दिन तुम्हारी मृत्यु का कारण बनूँगी।"

उस पल से अंबा के जीवन का हर कदम प्रतिशोध की अग्नि से प्रेरित था। उसने राजाओं से लेकर ऋषियों तक से मदद माँगी, लेकिन कोई भी भीष्म को हराने की प्रतिज्ञा नहीं कर पाया। अंततः अंबा ने घोर तपस्या की। उसका तप इतना कठोर था कि देवता भी प्रभावित हो गए। शिव ने उसे वरदान दिया-"अगले जन्म में तुम भीष्म के विनाश का कारण बनोगी।"

अंबा ने उसी क्षण अग्नि में प्रवेश कर देह त्याग दिया। परंतु यह अंत नहीं था, यह तो एक आरंभ था।

कुछ वर्षों बाद पंचाल नरेश द्रुपद के घर जन्म हुआ "शिखंडी" का। द्रुपद को वरदान मिला था कि उनकी संतान भीष्म के विनाश का साधन बनेगी। और यह वही अंबा का पुनर्जन्म था। जन्म के साथ ही एक रहस्य जुड़ा-यह कन्या थी, परंतु भविष्य ने इसे योद्धा का रूप दिया।

शिखंडी का बचपन विचित्र परिस्थितियों में बीता। द्रुपद जानते थे कि यह संतान किसी महान कार्य के लिए जन्मी है। उसे धनुर्विद्या, शस्त्रविज्ञान और राज्यकला का गहन प्रशिक्षण दिया गया। शिखंडी का मन युद्धकला में रम गया। जैसे-जैसे वह बढ़ी, उसकी आँखों में अंबा की अधूरी प्रतिज्ञा जलती रही।

राजमहल में कभी-कभी लोग फुसफुसाते-"यह वही आत्मा है, जो भीष्म से बदला लेने आई है।" और शिखंडी के मन में बार-बार यह आवाज गूंजती-"तुम्हें जीना भीष्म के लिए है, और मरना भी भीष्म के लिए।"

युवा होने पर शिखंडी को वीरता और पराक्रम के कारण सबने मान्यता दी। किंतु उनके जीवन का सबसे बड़ा मोड़ तब आया जब वरताण की भूमि में जाकर उन्हें अम्बालिका नामक यक्षिणी से वर मिला, जिससे उनका व्यक्तित्व योद्धा पुरुष का बन गया। यह परिवर्तन उन्हें महाभारत के युद्धक्षेत्र के लिए तैयार कर रहा था।

शिखंडी के भीतर अंबा का अपमान बार-बार याद आता। अक्सर वह स्वयं से कहती-"प्रतिशोध ही मेरा श्वास है, और प्रतिज्ञा ही मेरा धर्म।"और यही प्रतिज्ञा आगे चलकर महाभारत युद्ध की सबसे निर्णायक कथा बनी।

महाभारत का महान युद्ध छिड़ा। कुरुक्षेत्र की धरती पर लाखों योद्धाओं के बीच एक-एक पल इतिहास बन रहा था। पांडवों की सेना में खड़ा था-शिखंडी। अब वह केवल पंचाल का राजकुमार नहीं था, बल्कि वह आत्मा थी जो भीष्म की प्रतिज्ञा को तोड़ने आई थी।

भीष्म कुरुवंश के सबसे महान योद्धा थे। उनका वचन था-"जब तक मैं हथियार उठाए खड़ा हूँ, कोई मुझे हरा नहीं सकता।" पांडव जानते थे, भीष्म को हटाए बिना जीत संभव नहीं। और तब कृष्ण ने अर्जुन से कहा-"भीष्म को कोई नहीं हरा सकता, सिवाय शिखंडी के। वह अंबा का पुनर्जन्म है। भीष्म उस पर अस्त्र नहीं चलाएंगे।"

शिखंडी रथ पर खड़ा था, अर्जुन के साथ। सामने खड़े थे भीष्म-कुरुक्षेत्र के सूर्य, जिनके तेज से शत्रु काँपते थे। परंतु भीष्म का हृदय शिखंडी को देखते ही काँप उठा। उन्हें अंबा की प्रतिज्ञा याद आई। वह जानते थे-इस आत्मा के सामने मैं शस्त्र नहीं उठा सकता।

युद्धभूमि में गूंज उठा अर्जुन का गांडीव। शिखंडी आगे खड़ा रहा, और पीछे से अर्जुन ने बाणों की वर्षा कर दी। भीष्म का रथ टूट गया, कवच चूर-चूर हो गया। अंततः भीष्म धरती पर शरशय्या पर लेट गए।

शिखंडी ने प्रतिशोध पूरा किया। लेकिन उसके चेहरे पर गर्व नहीं था, केवल मौन था। जैसे आत्मा कह रही हो-"आज अंबा ने चैन की सांस ली।"

भीष्म ने भी स्वीकार किया-"शिखंडी, तुम मेरे लिए मृत्यु का साधन नहीं, मोक्ष का द्वार हो।"

इसके बाद भी शिखंडी ने युद्ध में अपना योगदान जारी रखा। वह वीरता से लड़ा, कई कौरव योद्धाओं का वध किया और अंत में अश्वत्थामा के हाथों मारा गया, परंतु इतिहास ने उसके नाम को केवल भीष्म की कथा में दर्ज किया।

शिखंडी का जीवन एक संदेश बन गया-"प्रतिशोध अगर धर्म से जुड़ जाए, तो वह केवल बदला नहीं रहता, वह नियति बन जाता है।"वह अंत तक पांडवों के साथ खड़ा रहा। लेकिन उसके जीवन का सबसे बड़ा क्षण वही था, जब उसने भीष्म को धराशायी किया।

महाभारत के रणक्षेत्र में शिखंडी की आत्मा नहीं लड़ी थी, वहाँ अंबा की प्रतिज्ञा लड़ी थी। और यही उस कथा की सबसे बड़ी परछाई है।

इस प्रकार एक अपहरण, जो राजधर्म के नाम पर हुआ था, अंबा के जीवन का शाप बन गया। वही शाप आगे चलकर शिखंडी के रूप में जन्म लेकर भीष्म के जीवन का अंत लिख गया।

सीख : धर्म और मर्यादा की राह पर भी यदि किसी का मन आहत होता है, तो उसका परिणाम, पीढ़ियों तक इतिहास को बदल देता है।

विकर्ण

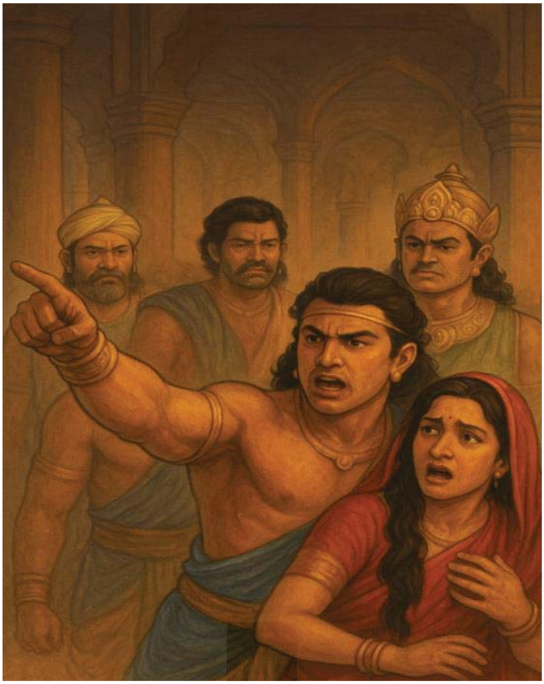

गांधारी के सौ पुत्रों में विकर्ण तीसरे क्रम का था। दुर्योधन और दुःशासन के बाद उसका जन्म हुआ। परंतु उसका स्वभाव अपने भाइयों से बिल्कुल भिन्न था।जहाँ दुर्योधन में अहंकार था, दुःशासन में क्रूरता, वहीं विकर्ण में संतुलन, शांति और न्यायप्रियता थी।

"विकर्ण-हस्तिनापुर का मौन विवेक" था,कौरवों में सबसे संवेदनशील,सबसे विवेकी"

कहते हैं-"सच्चे रत्न की पहचान अंधेरे में होती है-"महाभारत के अंधकार में विकर्ण ऐसा ही चमकता हुआ रत्न था,जब द्रोणाचार्य ने

राजकुमारों को शिक्षा दी, विकर्ण ने भी अस्त्र-शस्त्र विद्या सीखी। वह एक कुशल धनुर्धर और गदायुद्ध का जानकार था। लेकिन उससे भी अधिक बड़ा गुण उसमें था-धर्म को समझना।

जुए की सभा में, जब द्रौपदी को घसीटकर लाया गया और उसका अपमान हुआ, तब पूरे कौरव दल में केवल एक आवाज उठी-"विकर्ण" की-" सभा में मौन बैठा था धर्म, पर विकर्ण ने उसे जगा दिया।"

वह बोला-"भाइयो, यह अधर्म है। द्रौपदी को दांव पर लगाना अनुचित है। पत्नी को जुए में हारना संभव ही नहीं। और स्त्री का अपमान हम सबके लिए कलंक होगा*", "यह अधर्म है,एक नारी को दांव पर नहीं लगाया जा सकता,"द्रौपदी ने किसी पाप में भाग नहीं लिया, फिर यह कैसा न्याय है?"*

जब सभी ने नीति छोड़ दी, तब विकर्ण ने नीति की मशाल उठाई।उसने कहा-*"सभा में कोई बोले न बोले, धर्म को बोलना ही होगा,"*विकर्ण ने दुर्योधन से असहमति जताई। भीष्म और द्रोण को कठघरे में खड़ा किया। परंतु दुर्भाग्य यह कि नीति की आवाज राजदरबार में अक्सर दबा दी जाती है।

द्रौपदी ने उसकी ओर देखा-पहली बार कोई उसका पक्ष ले रहा था।

सभा सन्न रह गई। सब चुप थे। दुर्योधन क्रोध से तमतमा उठा-"विकर्ण, तू अपने ही भाइयों का विरोध करता है?"

लेकिन विकर्ण ने निर्भीक होकर कहा-"भाई, जो गलत है, वह गलत है। चाहे वह अपने द्वारा ही क्यों न किया जाए।"

द्रौपदी ने विकर्ण की ओर देखा। उस अंधेरी सभा में उसे यही एक दीपक दिखाई दिया।

कुरुक्षेत्र का युद्ध प्रारंभ हुआ। विकर्ण कौरव सेना में ही रहा, क्योंकि जन्म और परिवार का बंधन उसे बाँधे हुए था। पर उसका हृदय हमेशा धर्म की ओर झुकता रहा।वह जानता था कि पांडव सही हैं। लेकिन वह

यह भी जानता था कि भाइयों को छोड़कर वह अकेला कुछ नहीं कर पाएगा।

कहते हैं-"कभी-कभी इंसान रिश्तों और सत्य के बीच पिस जाता है। और जो सत्य चुनता है, वही इतिहास में अमर हो जाता है।"

सोलहवें दिन विकर्ण सामने आया-भीम के रथ के सामने।भीम गरजे-"विकर्ण, तू धर्म की बात करता था, फिर इस अधर्मी युद्ध में क्या कर रहा है?"

विकर्ण शांत स्वर में बोला-"मैंने द्रौपदी की पुकार सुनी थी, भीम। मैंने विरोध किया था। लेकिन भाइयों के प्रति मेरा कर्तव्य, मेरी बाध्यता बन गई।मैं युद्ध नहीं जीतना चाहता, केवल पाप का प्रायश्चित करना चाहता हूँ।"

भीम रुके,हतप्रभ-विकर्ण की आंखों में पश्चाताप था, लेकिन पीठ में नहीं-वह युद्ध को गले लगाता है, परंतु अपमान को नहीं।

भीम बोले-"विकर्ण, तुमसे युद्ध कर मैं खुद को दंड दे रहा हूँ।"

लेकिन युद्ध धर्म नहीं देखता, केवल परिणाम चाहता है।भीम ने विकर्ण को मारा, लेकिन उनका मन टूटा-"आज मैंने अपने जैसे धर्मात्मा को मारा।"विकर्ण के मारते समय भीम की आँखों में करुणा थी। उसने कहा-"विकर्ण, तू धर्मात्मा था। कौरवों में सबसे श्रेष्ठ। तेरा यह बलिदान अधर्म का नहीं, बल्कि धर्म का प्रतीक है।"

विकर्ण मुस्कुराया और अंतिम शब्द कहे-"धर्म का साथ देना ही जीवन की सच्ची विजय है, चाहे मृत्यु ही क्यों न मिले।"

जब विकर्ण मृत पड़े थे, पांडवों ने उनकी शवयात्रा को रोका नहीं, बल्कि-"धर्मवीर विकर्ण" के रूप में अंतिम संस्कार किया।कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा-"विकर्ण ने धर्म को तब चुना, जब पूरा संसार मौन था-"ऐसे व्यक्ति युगों में जन्म लेते हैं।"

विकर्ण की मृत्यु ने कौरव दल की आत्मा को हिला दिया।

दुर्योधन भी कुछ पल के लिए मौन हो गया। वह जानता था कि जिसने सभा में द्रौपदी का पक्ष लिया था, वही अब रणभूमि में सच्चाई के लिए प्राण दे चुका है।

सीख:-“सौ में से एक अगर धर्म पर अडिग रहे, तो वही सच्चे कुल का गौरव बनता है।”विकर्ण कौरव था, लेकिन उसके भीतर न्यायप्रियता का दीपक जलता रहा।और शायद इसलिए वह आज भी स्मरण किया जाता है,कौरवों के बीच धर्म का प्रहरी बनकर।

"धर्म की पहचान वंश से नहीं, विचार से होती है।" और "धर्म के पक्ष में बोलने के लिए उम्र नहीं, हिम्मत चाहिए।

विदुर

हस्तिनापुर की धरती पर महाराज विचित्रवीर्य की मृत्यु के बाद सिंहासन खाली पड़ा था। उस समय भीष्म पितामह ने व्यास से आग्रह कर वंश की रक्षा कराई। उसी से धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर का जन्म हुआ।धृतराष्ट्र अंधे थे, पांडु दुर्बल थे, और विदुर दासीपुत्र थे।

विदुर जन्म से ही असमानता का शिकार बने।कभी दरबार में उन्हें वह सम्मान नहीं मिला,जो राजकुमारों को दिया जाता था।लेकिन उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि बचपन से ही वे शास्त्र, नीति और धर्म में सबको पीछे छोड़ देते-*"जन्म नीचा हो सकता है, पर यदि विचार ऊँचा है,तो वही श्रेष्ठ होता है।"*

विदुर महाभारत का वह पात्र हैं, जिन्हें हम आज धर्मराज का मार्गदर्शक कह सकते हैं।

उन्होंने सदैव न्याय और सत्य का साथ दिया।कौरवों और पांडवों के बीच जब भी विवाद होता, विदुर ही वह स्वर थे, जो निष्पक्ष होकर न्याय की बात रखते।

उन्होंने दुर्योधन को बार-बार समझाया-“ईर्ष्या और लोभ से भस्म हो जाओगे-अधर्म का मार्ग छोड़ो।”लेकिन दुर्योधन ने उनकी एक न सुनी।

जब पांडवों को लाक्षागृह में भेजने की साजिश रची गई, विदुर ने गुप्त संदेश के माध्यम से उन्हें सचेत कर दिया।“यदि विदुर न होते तो पांडव वहीं भस्म हो जाते। ”-*“सच्चा सलाहकार वही है, जो संकट आने से पहले चेतावनी दे।”*

विदुर ने धृतराष्ट्र को भी बार-बार चेताया।उन्होंने साफ कहा-“महाराज, पुत्रमोह में अंधे मत बनो।न्याय से बड़ा कोई संबंध नहीं होता।पांडवों को उनका अधिकार दे दो।”

लेकिन धृतराष्ट्र पुत्रस्नेह में बंधे रहे।

भीष्म पितामह ,उन्हें राजसभा का मस्तिष्क मानते थे, तो युधिष्ठिर उन्हें आत्मा।जब धृतराष्ट्र ने द्रौपदी चीरहरण पर मौन धारण किया, तब केवल विदुर ही थे, जिन्होंने ऊँचे स्वर में सभा में कहा:"जहाँ स्त्री का अपमान होता है, वहाँ धर्म मृत हो जाता है।"उस दिन विदुर ने हस्तिनापुर की आत्मा को बचाने की कोशिश की - पर अधर्म भारी पड़ा।

जब कृष्ण स्वयं पांडवों का शांति दूत बनकर हस्तिनापुर आए, तो उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा-यदि आप चाहें, तो यह युद्ध रुक सकता है-लेकिन धृतराष्ट्र हिचकते रहे।

कृष्ण को विदुर के घर ठहरना पड़ा।विदुर ने कृष्ण का स्वागत इतने प्रेम और सादगी से किया कि आज भी उसका उदाहरण दिया जाता है-उन्होंने कोई राजसी व्यंजन नहीं परोसा, केवल साधारण साग और चावल दिया।

लेकिन कृष्ण ने उसी को आनंदपूर्वक स्वीकार किया-*“प्रेम से बढ़कर कोई भोज नहीं, और सादगी से बड़ा कोई वैभव नहीं।”*

महाभारत युद्ध छिड़ा।विदुर ने युद्ध में कोई शस्त्र नहीं उठाया,उन्होंने पहले ही कह दिया था-“मैं न अधर्म का साथ दूँगा, न भाई का, मैं केवल धर्म का साथ दूँगा-वे मौन साधक की तरह सब देखते रहे।

युद्ध समाप्त हुआ।हस्तिनापुर खून से लाल हो गया।धृतराष्ट्र और गांधारी शोक में डूबे।

विदुर ने देखा कि यह सब उसी अधर्म का परिणाम था, जिसके खिलाफ वे हमेशा चेतावनी देते रहे।वे विरक्त हो गए और वन में चले गए।वन में जाकर विदुर ने तप किया, योग किया और अंततः वहीं समाधि ली।उनका जीवन एक साधक की तरह समाप्त हुआ।

विदुर महाभारत के उस स्तंभ की तरह हैं, जिन्होंने न युद्ध लड़ा, न सत्ता पाई, लेकिन जिनकी नीति और वाणी आज भी हर घर में ‘विदुर नीति’ बनकर गूँजती है।

महाभारत के सबसे प्रसिद्ध प्रसंगों में से एक है विदुर नीति।

हस्तिनापुर का एक शांत संध्या काल। राजा धृतराष्ट्र सिंहासन पर बैठे हैं, उनके पास खड़े हैं विदुर। धूप मध्यम है, बाहर युद्ध की गंध है, भीतर संबंधों की परछाइयाँ।

धृतराष्ट्र: (धीमे स्वर में):"विदुर, क्या मैं सचमुच अंधा हूँ... केवल नेत्रों से ही नहीं, विचारों से भी?"

विदुर: (कोमल और दृढ़ स्वर में):"भैया, नेत्रों से अंधे होना दुर्भाग्य हो सकता है, पर बुद्धि से अंधे होना विकल्प है। आपने विकल्प चुना है।"

धृतराष्ट्र:"तुम्हारा दोष नहीं है विदुर, तुम बचपन से ही सत्य के दूत रहे हो। पर क्या तुम कभी समझ पाए, कि मुझे हर पल अपने पुत्र दुर्योधन के स्वप्न में भी पराजय क्यों दिखती है?"

विदुर:"क्योंकि स्वप्नों में भी सत्य से बचा नहीं जा सकता। और दुर्योधन ने जिस अधर्म की नींव रखी है, उस महल की दीवारें बहुत कमज़ोर हैं।"

धृतराष्ट्र:"तुम मेरे भाई हो, पर मुझे हर बार लगता है कि तुम पांडवों के साथ अधिक हो।"

विदुर:"मैं न्याय के साथ हूँ भैया, और जहां न्याय होगा, वहीं मेरा स्थान होगा। अगर दुर्योधन भी धर्म के पथ पर होता, तो मैं उसी के पीछे खड़ा होता।"

एकांत में विदुर और धृतराष्ट्र का अंतिम वार्तालाप(यह संवाद महाभारत युद्ध से पहले का है, जब सबकुछ उजड़ने की कगार पर था)

धृतराष्ट्र:"विदुर...क्या मेरा पुत्र सच में अधर्मी है? क्या मैं स्वयं ही कारण हूँ?"

विदुर:"राजा स्वयं में राष्ट्र होता है, और आप जैसे अंधे राजा ने अधर्म को भी दृष्टि दे दी। आपने दुर्योधन को प्यार दिया, पर नीति नहीं सिखाई।"

धृतराष्ट्र:"क्या मैं क्षमा योग्य हूँ?"

विदुर:"हर आत्मा क्षमा योग्य है, भैया। परंतु पहले आपको सत्य स्वीकारना होगा। पांडव आपके पुत्रों जैसे हैं। उनके साथ न्याय कीजिए। यह अंतिम अवसर है।"

"सत्य के शब्द भले ही धीमे हों, पर उनकी प्रतिध्वनि युगों तक गूंजती है,"जो भाई होते हुए भी मंत्री था, और जो मंत्री होते हुए भी न्याय का अवतार, "कभी सिंहासन पर नहीं बैठा, पर हर राजा से ऊंचा था - क्योंकि वह नीति पर टिका था-वह विदुर थे ।

सीख:-धर्म की राह कठिन हो सकती है, लेकिन अधर्म का परिणाम विनाश ही होता है।सत्य बोलने वाला अक्सर अकेला होता है, लेकिन उसका हर शब्द अमर हो जाता है।

जयद्रथ

सिंधु देश का राजकुमार जयद्रथ, महाभारत की उस लंबी और जटिल कथा का पात्र है, जिसने अपने साहस, अहंकार और भाग्य के कारण इतिहास में एक अमिट छाप छोड़ी। उसका जीवन केवल एक योद्धा की कहानी नहीं, बल्कि अभिमन्यु जैसे वीर की शहादत से गहराई से जुड़ा हुआ है।

जयद्रथ का जन्म एक समृद्ध राजघराने में हुआ था। पिता ने उसमें बचपन से ही युद्ध कौशल जगाने की कोशिश की। उसकी तलवारबाज़ी, धनुर्विद्या और रणनीति पर पकड़ मज़बूत थी। लेकिन उसके व्यक्तित्व का एक और पहलू था-वह अत्यधिक महत्वाकांक्षी था। महत्वाकांक्षा बुरी नहीं होती, लेकिन जब उसमें अहंकार और अधीरता घुल जाती है, तो वही महत्वाकांक्षा विनाश का कारण बन जाती है।

जयद्रथ का विवाह, दुःशला से हुआ था, जो कि दुर्योधन की बहन थी। यही विवाह उसे कुरु वंश से जोड़ता है। वह अक्सर हस्तिनापुर आता-जाता और दुर्योधन सहित अन्य कौरवों के साथ गहरी मित्रता निभाता। धीरे-धीरे उसकी सोच भी कौरवों जैसी हो गई।

कुरुक्षेत्र युद्ध का तेरहवाँ दिन था। द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की। पांडव सेना में केवल अर्जुन ही उसे पूरी तरह भेदना जानते थे। लेकिन उस दिन अर्जुन को सामरिक कारणों से दूर भेजा गया। ऐसे में पांडवों ने निर्णय किया कि अभिमन्यु, जो कि चक्रव्यूह भेदना जानता था, वह सेना का नेतृत्व करेगा।

अभिमन्यु ने कहा-"मैं चक्रव्यूह में प्रवेश कर सकता हूँ, किंतु उससे बाहर आने का रहस्य नहीं जानता।"भीम और अन्य पांडव बोले-"तू चिंता न कर, हम पीछे-पीछे आकर तुझे बाहर निकालेंगे।"

लेकिन यही वह क्षण था जब जयद्रथ का भाग्य उससे जुड़ा। जयद्रथ को शिव से यह वरदान मिला था कि वह एक दिन के लिए पांडवों को रोक सकेगा, यदि वे एक साथ उस पर आक्रमण करें।

और तेरहवें दिन वही हुआ। अभिमन्यु चक्रव्यूह में घुसा, पांडव पीछे बढ़े। तभी जयद्रथ ने अद्‌भुत पराक्रम दिखाया। उसने भीम, नकुल, सहदेव और युधिष्ठिर को रोक दिया। वह अकेला था, परंतु उसने पांडवों को आगे बढ़ने ही नहीं दिया।

इस बीच अभिमन्यु भीतर अकेला रह गया। कौरव योद्धाओं ने मिलकर उस पर आक्रमण किया। द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और दुर्योधन सबने मिलकर उसे घेर लिया। अभिमन्यु ने अद्वितीय शौर्य दिखाया, परंतु अंततः वीरगति को प्राप्त हुआ।

यही जयद्रथ की सबसे बड़ी भूमिका थी। उसने अभिमन्यु को अकेला कर दिया।

अर्जुन ने लौटकर अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार सुना, तो उसका क्रोध आकाश को चीर गया। उसने शपथ ली-यदि मैं कल सूर्यास्त तक

जयद्रथ का वध न कर पाया, तो अग्नि में प्रवेश कर प्राण त्याग दूँगा।-यह शपथ सुनते ही पूरी सेना कांप उठी।

अगले दिन युद्धभूमि में एक अनोखा दृश्य था। जयद्रथ को बचाने के लिए दुर्योधन, द्रोण, कर्ण सबने घेराबंदी कर दी। उन्होंने ठान लिया कि अर्जुन को सूर्यास्त तक रोकना है।

युद्ध घमासान था। अर्जुन अपने गांडीव से वज्र की तरह बाण बरसा रहे थे ।समय तेजी से बीत रहा था।सूर्य पश्चिम की ओर झुक रहा था। कौरवों के चेहरों पर मुस्कान थी, अर्जुन के साथियों के चेहरों पर चिंता।तभी कृष्ण ने अपनी माया से सूर्य को बादलों के पीछे छुपा दिया। सबको लगा सूर्य अस्त हो गया। जयद्रथ हर्ष में भरकर अपने रथ से बाहर आया और बोला-"देखो, अर्जुन का प्रण व्यर्थ गया। अब वह अग्नि में प्रवेश करेगा।"तभी कृष्ण ने कहा-"सूर्यास्त अभी नहीं हुआ है।

उसी क्षण, कृष्ण ने अर्जुन को संकेत दिया-अर्जुन के बाण ने जयद्रथ की गर्दन को शरीर से अलग कर हवा में उड़ाते हुए मीलों दूर,उसके पिता वृधाक्षत्र जो अपने आश्रम में तप में लीन थे-जिन्होंने वरदान दिया था-"जो मेरे पुत्र का सिर ज़मीन पर गिराएगा, उसका सिर भी फट जाएगा",के गोद में गिरा दिया । उन्होंने अनजाने में जैसे ही उसे नीचे फेंका, उसी क्षण उनका मस्तक फट गया, और वे वहीं प्राणहीन हो गए ।

जयद्रथ की मृत्यु ने पांडवों को राहत दी। अभिमन्यु की आत्मा को न्याय मिला। परंतु कौरव पक्ष निराश हो गया।

सीख :इतिहास ने जयद्रथ को कभी महान योद्धा नहीं कहा। क्यों? क्योंकि उसने अन्याय के लिए अपना शौर्य दिखाया। उसकी वीरता उसके अहंकार और गलत पक्ष के साथ खड़े होने में खो गई-*"कभी-कभी एक क्षण का अहंकार, पीढ़ियों तक धिक्कारा जाता है"।*

कंस

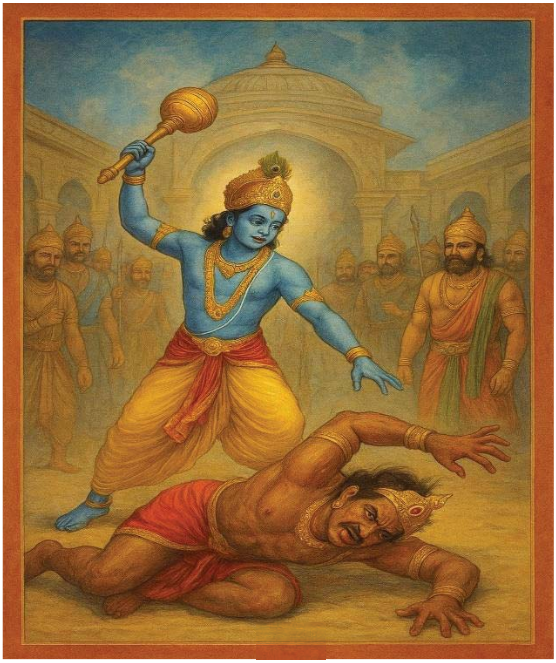

मथुरा नगरी में अंधक-वृष्णि वंश का राजकुमार कंस, जन्म से ही असाधारण बल और वीरता का प्रतीक माना जाता था। उसके पिता उग्रसेन, यदुवंशी राजा थे, जिनकी प्रजा पर गहरी पकड़ और न्यायप्रियता थी। परंतु कंस का स्वभाव उनसे बिल्कुल अलग था। बचपन से ही उसमें क्रूरता, महत्वाकांक्षा और प्रभुत्व की अदम्य लालसा थी।

कंस का बचपन साधारण राजकुमारों जैसा नहीं था। वह युद्धकला, रथ-चालन और अस्त्र-शस्त्र में अद्वितीय दक्ष था। लोग उसे देखकर कहते- "यदि यह धर्म के मार्ग पर चला, तो महान होगा, और यदि अधर्म की ओर मुड़ा, तो विनाश का कारण।"

कंस की शक्ति इतनी थी कि वह अकेला सौ-सौ योद्धाओं को परास्त कर सकता था। परंतु उसकी महत्वाकांक्षा उसे धीरे-धीरे निर्दयी बना रही थी।

युवा होने पर कंस ने सत्ता की ओर कदम बढ़ाए। अपनी शक्ति और कुटिल बुद्धि से उसने मथुरा का सिंहासन हथिया लिया। अपने पिता उग्रसेन को कारागार में डाल दिया और स्वयं राजा बन बैठा। यह वही क्षण था, जब मथुरा के आकाश से धर्म का उजाला धीरे-धीरे धुंधला होने लगा।

कंस ने यदुवंश को अपने कठोर शासन से दबा दिया। उसकी नीतियाँ केवल उसके स्वार्थ और आतंक पर आधारित थीं। उसकी महत्वाकांक्षा सिर्फ़ एक राजा बने रहने की नहीं थी, बल्कि पूरी आर्यावर्त पर अपना नियंत्रण स्थापित करने की थी।

कंस की बहन देवकी का विवाह वसुदेव से हुआ था। विवाह के समय कंस ने स्वयं बहन और बहनोई को रथ में बैठाकर महल तक पहुँचाने का प्रण किया। परंतु उसी समय आकाशवाणी हुई-"कंस, जिस बहन को तू स्नेहपूर्वक विदा कर रहा है, उसी के गर्भ से जन्म लेने वाला आठवाँ पुत्र तेरा संहार करेगा।"

यह वाणी सुनते ही कंस का हृदय काँप उठा। उसका चेहरा क्रोध से विकृत हो गया। उसने तलवार खींच ली और उसी क्षण देवकी को मारने चला।

वसुदेव ने हाथ जोड़कर कहा-"राजन, अपनी बहन की हत्या का पाप मत लीजिए। मैं वचन देता हूँ कि जो भी संतान होगी, मैं उसे आपके हवाले कर दूँगा।"

कंस ने थोड़ी देर सोचा और फिर देवकी को जीवित छोड़ दिया। परंतु उसने वसुदेव और देवकी दोनों को कारागार में डाल दिया और पहरेदारों से सख्त निगरानी करने का आदेश दिया।

समय बीता, देवकी के गर्भ से एक-एक कर संतानें जन्म लेती गईं। हर बार वसुदेव उन्हें कंस के पास ले जाते, और कंस निर्दयता से उन्हें मार

डालता।सातवीं संतान-बलराम,योगमाया के प्रभाव से गर्भ से निकालकर रोहिणी के गर्भ में स्थानांतरित कर दिया गया। और आठवीं संतान के समय वह अद्भुत घटना घटी, जिसने इतिहास बदल दिया।

कारागार की घोर अंधकारमय रात में देवकी ने श्रीकृष्ण को जन्म दिया। चतुर्भुज रूप में उन्होंने देवकी-वसुदेव को दर्शन दिए और कहा- "मैं ही वह हूँ, जिसके कारण कंस भयभीत है। लेकिन मुझसे डरने की नहीं, विश्वास करने की आवश्यकता है । अब तुम मुझे गोकुल में नंद-यशोदा के घर छोड़ आओ।"

कृष्ण के चाहने से कारागार के द्वार खुल गए, पहरेदार सो गए और वसुदेव, बालक को टोकरी में रखकर यमुना पार कर नंदगाँव पहुँचे। वहाँ उन्होंने नवजात कन्या योगमाया को उठाया और कृष्ण को छोड़ आए।

जब वसुदेव वापस लौटे,कंस ने बालिका को भी छीनकर मारना चाहा। लेकिन वह बालिका आकाश में उड़ गई और बोली-"हे कंस, जिसने तेरा अंत करना है,वह जन्म ले चुका है और सुरक्षित है।"

यह सुनकर कंस का भय और क्रूरता कई गुना बढ़ गई।

अब कंस ने निश्चय किया कि वह किसी भी हाल में उस बालक को नष्ट करेगा। उसने अपने राक्षस सेनापतियों -पूतना, त्रिणावर्त, बकासुर, अघासुर, केशी, धेनुकासुर-सबको गोकुल की ओर भेजा। परंतु एक-एक कर वे सभी कृष्ण के हाथों मारे गए।

पूतना जब विषपान कराने आई, कृष्ण ने उसका प्राण हर लिया। त्रिणावर्त आंधी बनकर उठा, कृष्ण ने उसका गला पकड़कर दबा दिया। बकासुर बगुले का रूप धर आया, कृष्ण ने उसकी चोंच फाड़ दी। अघासुर सर्प बनकर आया, कृष्ण ने उसका प्राण हर लिया।

हर बार कंस को समाचार मिलता कि उसका भेजा हुआ राक्षस मारा गया है। भय उसकी छाती में गहराता गया।

कंस ने अंततः निश्चय किया कि वह कृष्ण और बलराम को मथुरा बुलाएगा। उसने अखिल भारत में धनुर्धर महायज्ञ और कुश्ती महोत्सव का आयोजन कराया। यह आयोजन केवल छल था-ताकि कृष्ण और बलराम उसके महाबली योद्धाओं से भिड़कर मारे जाएँ।

अखाड़े में पहले मल्लयुद्ध हुआ। मूसलधारी चाणूर और मुष्टिक जैसे बलवान पहलवान उतरे। परंतु कृष्ण और बलराम ने खेल-खेल में उन्हें धराशायी कर दिया।

अब कंस का धैर्य टूट गया। उसने खुले आम आज्ञा दी-"इन बालकों को तुरंत मार डालो,"

यही वह क्षण था जब कृष्ण की आँखों में बिजली कौंधी। उन्होंने एक छलाँग में अखाड़े की ऊँची दीवार पार की और कंस के रथ पर चढ़ गए।कंस ने तलवार उठाई, परंतु कृष्ण ने उसके मुकुट को खींचकर फेंक दिया और उसकी कमर पकड़कर उसे जमीन पर पटक दियाऔर इस प्रकार कंस का जीवन समाप्त हुआ।

कंस का अंत हो गया। भय और आतंक का साम्राज्य उसी क्षण ढह गया।मथुरा की जनता ने जय-जयकार की। उग्रसेन को पुनः गद्दी पर बैठाया गया।

सीखः-"क्रूरता चाहे कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो, सत्य और धर्म की एक आहट से ढह जाती है।"

जरासंध

मगध की धरती पर, गिरिव्रज (आज का राजगीर) में जन्मा था वह योद्धा, जिसका नाम सुनकर ही आर्यावर्त के बड़े-बड़े राजाओं के दिल काँप उठते थे। वही था महाराज जरासंध।

उसका जन्म ही अद्‌भुत था। उसके पिता बृहद्रथ को संतान का सुख नहीं मिल रहा था। एक दिन उन्हें एक ऋषि ने फल दिया और कहा-"इससे तुम्हें संतान होगी।" बृहद्रथ ने वह फल अपनी दोनों पत्नियों को आधा-आधा दे दिया। समय आने पर दोनों ने आधा-आधा शिशु जन्मा-आधा शरीर इधर, आधा उधर।

राजा का दिल टूट गया, पर तभी 'जरा' नाम की एक रहस्यमयी वृद्धा ने दोनों टुकड़ों को जोड़ दिया। जैसे ही दोनों हिस्से मिले, वह जीवित हो उठा। जरा ने कहा-"मैंने इसे जोड़ा है, इसका नाम "जरासंध" होगा।

जरासंध बड़ा हुआ तो उसका साहस, शक्ति और युद्धकौशल अतुलनीय था। वह केवल योद्धा नहीं था, बल्कि एक ऐसा राजा था जो अपने मित्रों के लिए जान भी दे सकता था और दुश्मनों के लिए काल बन सकता था।

जरासंध की दो बेटियाँ-अस्ति और प्राप्ति-कंस की रानियाँ थीं। जब कृष्ण ने कंस का वध किया, तो जरासंध का अहंकार घायल हो गया। उसे यह अपमान असह्य था कि दामाद को मारकर यदुवंशी उसके सामने चुनौती दें।उसने कसम खाई-"मैं यदुवंश का अंत करके ही दम लूँगा।"

जब कृष्ण ने कंस का वध किया, तो जरासंध के हृदय में आग भड़क उठी। वह बार-बार मथुरा पर चढ़ाई करता। कहते हैं, उसने 17 बार युद्ध किया और हर बार कृष्ण-बलराम से हारकर लौटता, लेकिन कभी हार मानता नहीं।उसकी एक पंक्ति मशहूर थी-"हारने वाला वही है जो लड़ना छोड़ दे, और मैं कभी नहीं छोड़ूंगा।"

प्रजाजन,कृष्ण को देखकर कहते-"देखो, शक्ति से बड़ा है बुद्धि। जरासंध बार-बार हारता है, क्योंकि कृष्ण को केवल युद्ध जीतना नहीं आता, बल्कि समय को अपने पक्ष में करना भी आता है।"

अठारहवीं बार जरासंध फिर सेना लेकर आया। इस बार कृष्ण ने समझा कि निरंतर युद्ध से मथुरा की जनता त्रस्त हो जाएगी। इसलिए उन्होंने यदुवंशियों को लेकर समुद्र तट पर एक नया नगर बसाया-द्वारका।द्वारका का निर्माण इतना सुदृढ़ और सुंदर था कि इसे देखने मात्र से शत्रु का साहस टूट जाता।

जरासंध केवल योद्धा ही नहीं, बल्कि महत्त्वाकांक्षी भी था। वह सभी राजाओं को परास्त कर उन्हें बंदी बनाता और एक यज्ञ के लिए बलिदान

देने की योजना बनाता-यह यज्ञ उसे चक्रवर्ती सम्राट बना सकता था।उसके कारागार में 86 राजा कैद थे, जिनकी पुकार स्वर्ग तक गूँजने लगी।

कृष्ण ने योजना बनाई। भीम और अर्जुन को लेकर वे ब्राह्मण वेश में मगध पहुँचे। जरासंध ने अतिथि-सत्कार किया। परंतु थोड़ी ही देर में पहचान गया कि ये साधारण ब्राह्मण नहीं।उसने हँसकर कहा-"कृष्ण, तू छलिया है। जो चाहता है स्पष्ट कह। क्या यज्ञ में विघ्न डालने आया है?"

कृष्ण ने उत्तर दिया-"जरासंध, हम तुझे युद्ध के लिए ललकारने आए हैं। चुन, अर्जुन से लड़ेगा या भीम से?"जरासंध ने भीम को चुना। और दोनों में गदा-युद्ध आरंभ हुआ।

चौदह दिन और रात तक युद्ध चला। धरती काँपती रही। दोनों के वार से पर्वत टूटते जैसे प्रतीत होते।अंततः कृष्ण ने भीम को संकेत दिया-उसने एक तिनका उठाकर फाड़ दिया।इशारा था-"इसे दो हिस्सों में बाँटो।"

भीम ने जरासंध को पकड़कर उसकी देह फाड़ दी और दोनों हिस्सों को अलग-अलग दिशाओं में फेंक दिया।

जरासंध के मरते ही उसकी जेल के दरवाजे खुले। अस्सी से अधिक राजा मुक्त हुए। सबने मिलकर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का समर्थन किया।

इस प्रकार जरासंध की मृत्यु केवल एक राजा का अंत नहीं थी, बल्कि धर्म और अधर्म की निर्णायक लड़ाई का एक बड़ा पड़ाव थी।

सीखः-जरासंध बलशाली था, परंतु उसकी शक्ति में दर्प और अत्याचार का जहर था। वह दूसरों को बंदी बनाकर सम्राट बनना चाहता था। लेकिन इतिहास ने सिखाया -*"जहाँ अहंकार है, वहाँ पराजय निश्चित है।"*

शिशुपाल

चेदि-नरेश दमघोष और उनकी रानी श्रीमती ने जब पुत्र-रत्न पाया तो उत्सव का माहौल था। परंतु जैसे ही शिशु का मुख देखा गया, सब स्तब्ध रह गए। बालक के तीन नेत्र थे, चार भुजाएँ थीं और मुख में दाँत पहले से ही उगे हुए थे। राजमहल में भय का वातावरण फैल गया।

रानी विलाप करने लगीं-“हे देव, यह कैसा विकृत बालक जन्मा है? क्या यह हमारे वंश का अंत कर देगा?”

तभी आकाशवाणी हुई-“मत डरो। यह बालक बलशाली होगा। परंतु इसके अतिरिक्त अंग और विकृतियाँ तब तक बनी रहेंगी, जब तक कोई विशेष व्यक्ति इसे गोद में न ले ले। और इसकी मृत्यु उसी के हाथों होगी।”

समय बीतता गया। रानी का हृदय मातृत्व से भरा था। उन्होंने यह विचित्र संतान भी प्यार से पाली।

एक दिन वसुदेव अपनी पत्नी रोहिणी के साथ चेदि-राज्य पहुँचे। वे बालक को गोद में लेने लगे। जैसे ही शिशु वसुदेव की गोद में गया, उसके अतिरिक्त हाथ-पाँव और आँखें गायब हो गईं। वह सामान्य रूप का हो गया।

आकाशवाणी ने स्पष्ट कर दिया था-"जिसने इसे सामान्य बनाया है, उसी के कुल के द्वारा इसका अंत होगा।"वसुदेव को सुनकर चिंता हुई-क्योंकि वे जानते थे कि यह भविष्यवाणी उनके पुत्र कृष्ण से जुड़ी है।

शिशुपाल की माता ने श्रीकृष्ण से वचन लिया था कि यदि शिशुपाल की सारी गलतियाँ (अपराध, घातक व्यवहार, अपमानजनक शब्द आदि) गिनकर एक निश्चित संख्या तक पहुँच जाएँ (कुल 100 बार), तब तक वे उसे क्षमा करेंगे । श्रीकृष्ण ने भी यह वचन दिया।

इस वचन के पीछे माता का उद्देश्य था कि पुत्र के अपराधों के बावजूद एक अवसर दिया जाए ताकि वह सुधर सके। साथ ही, यह वचन यह भी दर्शाता है कि प्रेम और करुणा के बावजूद यदि किसी का पथ विपथित होता जाए तो उसे समय पर सुधारने का अवसर देना अनिवार्य है।

शिशुपाल बड़ा हुआ। वह अत्यंत पराक्रमी, परंतु क्रोधी और उद्दंड स्वभाव का था। उसका मस्तिष्क अहंकार से भरा रहता। वह दूसरों का अपमान करने में आनंद लेता।

लोग कहते-"यह बालक जन्म से ही शाप और अहंकार लेकर आया है। इसकी वाणी तलवार की तरह है। मित्र को भी क्षण में शत्रु बना सकता है।"

कृष्ण और शिशुपाल का टकराव पहली बार रुक्मिणी के प्रसंग में हुआ।

विदर्भराज ने अपनी कन्या रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से तय कर दिया। किंतु रुक्मिणी मन ही मन श्रीकृष्ण को वरण कर चुकी थी। उसने एक गुप्त संदेश कृष्ण को भेजा-"हे माधव, यदि आप मुझे अपने वरण योग्य मानते हैं तो स्वयंवर में आकर मुझे हर ले जाइए।"

कृष्ण ने वैसा ही किया। रथ पर चढ़कर वे आए और रुक्मिणी को हर ले गए।

सभा में शिशुपाल अपमानित हुआ। उसका क्रोध फूट पड़ा। वह चिल्लाया-"कृष्ण, तू गोप-बालक है, मथुरा का भागा हुआ राजा। तुझे मेरे बराबर खड़ा होने का अधिकार भी नहीं। फिर तू मेरी वधू छीनकर ले गया? देख, मैं तुझे कभी क्षमा नहीं करूँगा।"उस दिन से शिशुपाल की आँखों में कृष्ण के लिए केवल द्वेष और प्रतिशोध ही बचा।

समय बीता। जब युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया, तब पूरे आर्यावर्त के राजाओं को आमंत्रित किया गया। सभी ने मत दिया कि 'अग्रपूजा' कृष्ण को मिलनी चाहिए।सभा में शिशुपाल भी मौजूद था। यह निर्णय सुनकर वह आगबबूला हो गया।

उसने सभा में ऊँची आवाज़ में कृष्ण को गालियाँ देना शुरू कर दिया-"कृष्ण, तू कौन है? एक गाय चराने वाला, जिसे भाग्य ने राजा बना दिया। तू यहाँ देवताओं और राजाओं के बीच पूजा के योग्य कैसे? यह सब छल है।"

वह एक-एक कर कृष्ण को सौ से भी अधिक अपमानजनक बातें कहने लगा। सभा स्तब्ध थी।भीष्म ने चेताया-"शिशुपाल, सीमा में रह। कृष्ण की निंदा तेरा सर्वनाश करेगी।"

परंतु शिशुपाल रुका नहीं।कृष्ण शांत बैठे सुनते रहे।

100 की गिनती पूरा होते ही श्री कृष्ण ने अपना सुदर्शन चक्र उठाया। एक क्षण में चक्र वज्र की तरह उड़ा और शिशुपाल का मस्तक धड़ से अलग कर दिया।कहा जाता है कि मरते ही शिशुपाल की आत्मा सीधा

कृष्ण में लीन हो गई। क्योंकि जन्म से ही उसका मन कृष्ण में रमा था, चाहे वह नफरत से ही क्यों न हो।

सभा सन्न रह गई। जैसे स्वयं धर्म ने अधर्म का अंत कर दिया हो।

इस घटना से एक गहरा संदेश मिलता है-"जिसका ध्यान लगातार भगवान में है, चाहे वह प्रेम से हो या द्वेष से, अंततः वह उन्हीं में विलीन होता है।"

सीख: शिशुपाल शक्तिशाली था, परंतु उसका अहंकार और कटु वाणी ही उसके विनाश का कारण बनी। वह अपमान को शौर्य समझता रहा, परंतु अंत में उसकी ही वाणी ने उसका सिर कटवा दिया।इतिहास यही कहता है-*"बोलने से पहले सोचो। क्योंकि वाणी वही करती है, जो तलवार भी नहीं कर पाती। तलवार केवल देह को मारती है, पर वाणी आत्मा को घायल करती है।"*

शकुनि

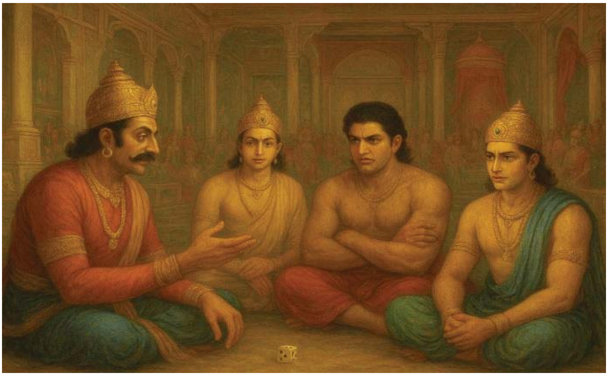

गंधार नगरी के राजा सुबल का पुत्र था -शकुनि। वह जन्म से ही तेजस्वी और बुद्धिमान था। गंधार वंश में जन्मा यह राजकुमार अपनी तीव्र बुद्धि, चालाकी और राजनीति में गहरी समझ के लिए प्रसिद्ध हुआ। लेकिन वही शकुनि, जिसकी बुद्धि साम्राज्य संभालने में लगनी चाहिए थी, वह चतुराई और कपट के कारण महाभारत के सबसे बड़े विनाश का कारण बना।

कहा जाता है कि बचपन में शकुनि बहुत धर्मनिष्ठ था, किंतु समय और परिस्थितियों ने उसके भीतर प्रतिशोध की आग जला दी। यही आग उसे उस रास्ते पर ले गई, जहाँ से वापसी संभव नहीं थी।

गंधार और हस्तिनापुर का रिश्ता उसकी बहन गांधारी से जुड़ा। गांधारी का विवाह धृतराष्ट्र से हुआ। यह विवाह शकुनि की ज़िंदगी का सबसे बड़ा मोड़ था। गांधारी ने अपने पति की अंधता को स्वीकार कर, खुद भी जीवन भर पट्टी बाँधकर जीने का संकल्प लिया। इस बलिदान को शकुनि कभी भूल नहीं पाया।उसका मानना था कि कुरुवंश ने उसकी

बहन का जीवन अंधकार में धकेल दिया है-"जब बहन की आँखों से उजाला छीन लिया जाए, तो भाई के दिल में केवल अंधकार ही बचता है।"

यहीं से शकुनि के मन में प्रतिशोध ने जन्म लिया।

शकुनि अपनी बुद्धि का जाल बुनने में माहिर था। उसने दुर्योधन को बचपन से ही अपने वश में कर लिया। उसने धीरे-धीरे दुर्योधन के मन में पांडवों के प्रति ईर्ष्या और द्वेष भर दिया।

दुर्योधन का अहंकार और शकुनि की चालाकी-यह संगम महाभारत के युद्ध की सबसे बड़ी वजह बना।

शकुनि की सबसे बड़ी ताकत थी पासे। कहा जाता है कि उसके पासे उसके पिता सुबल की हड्डियों से बने थे। उन पासों पर जो भी फेंकता, जीत हमेशा शकुनि की होती। यही कारण था कि वह जुए में अपराजेय माना जाता था।

"जब भाग्य पासों में बंधा हो, तो न्याय का पलड़ा हमेशा झुक जाता है।"

सभा में जब दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुए के लिए आमंत्रित किया, तो शकुनि ही वह खिलाड़ी था जिसने पासों का खेल खेला। एक-एक दाँव लगाते हुए युधिष्ठिर अपना सबकुछ हारते गए-पहले धन-दौलत, फिर राज्य, फिर अपने भाई और अंततः द्रौपदी तक।

सभा में द्रौपदी का चीरहरण हुआ, और उसके पीछे भी शकुनि की ही चाल थी।वह जानता था कि स्त्री का अपमान युद्ध की आग को जन्म देगा-"चालाकी का सबसे बड़ा हथियार है, दूसरों को उनके ही संकल्प से गिरा देना।"

महाभारत के युद्ध में शकुनि ने स्वयं बहुत अधिक युद्ध नहीं किया, पर उसकी बुद्धि हर जगह सक्रिय रही।वह कौरवों की रणनीति बनाता और पांडवों को फँसाने की योजना गढ़ता।

उसने दुर्योधन को बार-बार यह विश्वास दिलाया कि कौरव कभी हार नहीं सकते।

शकुनि का अंत भी युद्धभूमि में हुआ। महाभारत के युद्ध के अठारहवें दिन, सहदेव ने उसे ललकारा। सहदेव का संकल्प था-"जब तक मैं शकुनि का वध नहीं करूँगा, तब तक शांति नहीं लूँगा।"

युद्धभूमि में जब सहदेव और शकुनि आमने-सामने आए, तो शकुनि ने भी अपना पराक्रम दिखाया। परंतु सहदेव की प्रतिज्ञा के आगे उसकी सारी चालें ध्वस्त हो गईं। सहदेव ने उसे मार गिराया। इस प्रकार वह व्यक्ति, जिसने पांडवों और कौरवों के बीच युद्ध की आग लगाई, वही अंत में उस आग में भस्म हो गया।

धर्म की नींव जब डगमगाती हैतो विजय का महल चाहे जितना ऊँचा हो,ढह ही जाता है।

सीखः-शकुनि राजनीति का माहिर था, पर धर्म का शत्रु भी। उसकी गाथा हमें यह सीख दिलाती है कि केवल बुद्धि ही नहीं, बल्कि नीति और सत्य भी जीवन में हमेशा साथ होना चाहिए।-*"धोखे से जीता गया खेल, अंततः जीवन हर लेता है।"*

शल्य

मद्रदेश का राजा शल्य अपने समय के महान योद्धा थे । उनकी ख्याति केवल इस कारण नहीं थी कि वह रणभूमि में अद्वितीय थे , बल्कि इसलिए भी कि वह स्वभाव से उदार, धर्मप्रिय और सच्चा मित्र थे । परन्तु यही उदारता कभी-कभी उनके लिए बोझ भी बन जाती।

शल्य का जन्म मद्रराज के वंश में हुआ था । शल्य बचपन से ही साहसी और पराक्रमी और गदा, भाला, धनुष-बाण-हर शस्त्र में वह निपुण थे ।उनके शरीर की ताकत और रथ चलाने की कला अद्भुत थी। उनमे एक साथ सौ रथों पर हमला करने की क्षमता थी । रणभूमि में उनकी गदा का प्रहार पर्वत को भी चूर कर देता था ।

शल्य का विशेष संबंध पांडवों से था। उसकी बहन माद्री का विवाह पांडु से हुआ था। अतः नकुल और सहदेव शल्य के भांजे थे। इस नाते वह पांडवों को अपने सगे पुत्रों सा मानते थे ।

जब पांडव वनवास में थे, तब भी शल्य ने कई बार उन्हें सहारा देने की इच्छा जताई। परंतु नियति कुछ और ही लिख चुकी थी।

महाभारत का युद्ध जब समीप आया, तो दोनों पक्ष अपने-अपने समर्थ योद्धाओं को बुलाने में लगे।

पांडवों की ओर से युधिष्ठिर ने अपने मामा शल्य को बुलाने का निर्णय किया। शल्य भी बड़े उत्साह के साथ विशाल सेना लेकर पांडवों की ओर चल पड़े।

लेकिन दुर्योधन को यह समाचार मिल गया। वह चालाकी से आगे बढ़ा। उसने रास्ते भर शल्य और उसकी सेना का स्वागत किया, उन्हें भव्य अतिथि-सत्कार दिया।शल्य ने सोचा यह सब युधिष्ठिर की ओर से किया गया है। प्रसन्न होकर उसने कहा-"मैं कृतज्ञ हूँ, युधिष्ठिर, बोलो, मैं किस प्रकार तुम्हारा साथ दूँ?"

तभी दुर्योधन सामने आ गया-"मामा शल्य, यह स्वागत मैंने किया है। अब आप मेरा ऋण चुका दीजिए-मेरे साथ रहकर,मेरी ओर से युद्ध कीजिए ।"

शल्य स्तब्ध रह गए। परंतु क्षत्रिय धर्म और वचन की मर्यादा में बंधकर उन्होंने कहा-"हे दुर्योधन, तूने मेरा आतिथ्य किया है-अतः अब मैं तेरी ओर से ही युद्ध करूँगा। परंतु याद रखना, मेरा हृदय पांडवों के साथ रहेगा।"

जब युद्ध आरंभ हुआ, तो शल्य की वीरता का लाभ दुर्योधन ने उठाया।सबसे महत्वपूर्ण प्रसंग तब आया जब कर्ण को अर्जुन से युद्ध करना था। जब कर्ण को युद्ध में सारथी (रथी) की आवश्यकता पड़ी थी, तो उन्होंने शल्य से सारथी बनने का अनुरोध किया।

लेकिन शल्य का मन मूलतः पांडवों की ओर था।

कर्ण ने चालाकी से शल्य को अपने पास बुलाया और उन्हें बहुत सम्मानित भाव से कहा:"हे शल्य महाराज, आपका सारथी बनना मेरे लिए

सौभाग्य की बात होगी। आप मेरे लिए वह मार्गदर्शक बनिए, जिससे मैं विजय प्राप्त कर सकूं।"

शल्य ने सोचा कि कर्ण को उनका सारथी बनाना उनके लिए सम्मान का विषय होगा, इसलिए उन्होंने यह वचन दे दिया।परंतु शल्य ने मन ही मन यह संकल्प लिया कि वे कौरवों की ओर से युद्ध करेंगे लेकिन अर्जुन के साथ निर्णायक युद्ध में कर्ण की मदद नहीं करेंगे, बल्कि अर्जुन की सहायता करेंगे।

इस प्रकार, शल्य चालाकी और नीति के मिश्रण से कर्ण के सारथी बने।

शल्य ने कर्ण का सारथी बनने का वचन दिया, परंतु इरादे से अर्जुन की सहायता का संकल्प किया।यह घटना महाभारत में नीति, धर्म, वचनबद्धता और छल की परस्पर टकराती हुई परस्पर संबंधों का शानदार उदाहरण है।

अंततः युद्ध के निर्णायक समय में शल्य ने कर्ण की मदद नहीं की, जिससे कर्ण की मृत्यु हुई।जब कर्ण का रथ कीचड़ में फँस गया और उसका परशुराम का दिया श्राप भी सच हो गया, तब अर्जुन ने अवसर देखकर कर्ण का वध कर दिया।

उस क्षण शल्य चुपचाप खड़े रहे । वह जानते थे कि यह युद्ध, धर्म का युद्ध है और नियति ने कर्ण के लिए यही अंत लिखा था।

कर्ण की मृत्यु के बाद दुर्योधन ने शल्य को कौरव सेना का सेनापति बनाया।

शल्य ने भी अपनी पूरी शक्ति झोंक दी। उसने भीम, युधिष्ठिर और अर्जुन तक को रणभूमि में कड़ी चुनौती दी।उनकी गदा का प्रहार इतना भयानक था कि पांडव भी उससे बचने लगे।

आखिरकार युधिष्ठिर स्वयं शल्य से आमने-सामने हुए।युधिष्ठिर प्रायः शांत और संयमी थे, परंतु इस युद्ध में उन्होंने अपनी पूरी क्षमता दिखाई।

शल्य ने सोचा था कि युधिष्ठिर में युद्ध कौशल कम है, परंतु वह भ्रमित थे-युधिष्ठिर ने अपनी भाला द्वारा प्रहार किया कि अंततः शल्य घायल होकर रथ से गिर पड़ा।वे रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हुए ।

सीखः-शल्य से मिलने वाली सीख यह है की उदारता और धर्मप्रियता गुण हैं, परंतु यदि उनमें विवेक न हो तो वे हमें विपरीत मार्ग पर ले जा सकते हैं।शल्य पांडवों के मामा थे , उनका हृदय पांडवों के साथ था, परंतु वचनबद्धता ने उन्हे कौरवों की ओर खड़ा कर दिया।अंततः वह धर्म के विरुद्ध खड़ा रहे और वीरगति को प्राप्त हुआ।

"सच्चा वीर वही है, जो धर्म का साथ चुने। केवल संबंध और वचन के लिए अन्याय का समर्थन करने वाला अंत में हार ही जाता है।"

कृपाचार्य

कृपाचार्य का जन्म एक अद्भुत कथा है। वे ऋषि शारद्वान के पुत्र थे। शारद्वान स्वयं ब्रह्मर्षि गौतम के वंशज थे। कहते हैं कि वे इतने कठोर तपस्वी थे कि उनके धनुर्विद्या कौशल की चर्चा देवताओं तक पहुँची थी। शारद्वान ने तप करते हुए भी शस्त्रकला में इतनी सिद्धि प्राप्त कर ली थी कि इंद्र तक भयभीत हो गए। वे चाहते थे कि शारद्वान का तप और उनका शस्त्रबल कहीं देवताओं के लिए चुनौती न बन जाए। तभी शारद्वान का तप एक विचित्र प्रसंग की ओर मुड़ गया। उनके तेज से उनके पास ही एक बालक और एक बालिका का जन्म हुआ -कृप और कृपी। इस प्रकार उनका जन्म असाधारण था, और यहीं से यह तय हो गया कि कृपाचार्य जीवनभर साधारण न होकर महाभारत की गाथा का महत्वपूर्ण हिस्सा बनेंगे।

राजा शांतनु ने उन बालकों को अपने राज्य में स्वीकार किया और उनका पालन-पोषण कराया। कृपाचार्य धीरे-धीरे बड़े हुए और अपने पिता से शस्त्रविद्या सीखी। वे छोटे से ही तेजस्वी, धीर और गंभीर थे। जब वे

युवावस्था में पहुँचे तो उनकी पहचान केवल एक धनुर्धर के रूप में नहीं थी, बल्कि वे नीति, धर्म और संयम से भी परिपूर्ण थे।

कृपाचार्य का संबंध द्रोणाचार्य से गहरा था। उनकी बहन कृपी का विवाह द्रोणाचार्य से हुआ। इस नाते कृपाचार्य न केवल उनके साले थे बल्कि घनिष्ठ मित्र भी। जब द्रोणाचार्य हस्तिनापुर आए और कौरव-पांडवों को शिक्षा दी, तब कृपाचार्य ने उन्हें हर संभव सहयोग दिया। धीरे-धीरे कृपाचार्य स्वयं भी हस्तिनापुर के कुलगुरु के रूप में स्थापित हो गए।

कौरव और पांडव- दोनों ही पक्ष उनके ज्ञान और अनुभव का सम्मान करते थे। कृपाचार्य के पास ऐसी विशेषता थी कि वे किसी के पक्षधर होकर नहीं बोलते थे, वे हमेशा सत्य और धर्म के साथ खड़े रहते। उनकी वाणी संयमित और उनके निर्णय न्यायपूर्ण होते थे। जब हस्तिनापुर दरबार में उलझनें होतीं, तो बहुत बार धृतराष्ट्र उनसे सलाह लिया करते।

महाभारत युद्ध के समय कृपाचार्य कौरवों की ओर से लड़े। इसका कारण केवल दुर्योधन का पक्ष लेना नहीं था, बल्कि हस्तिनापुर के कुलगुरु होने का कर्तव्य था। वे जानते थे कि युद्ध विनाशकारी है, फिर भी अपने दायित्व से पीछे नहीं हटे। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी-धर्म और कर्तव्य के बीच संतुलन।युद्धभूमि में उन्होंने कई बार अपनी वीरता का प्रदर्शन किया।

जब द्रोणाचार्य का वध हुआ, तब कृपाचार्य के लिए यह बहुत व्यक्तिगत आघात था। उनकी बहन कृपी विधवा हो चुकी थीं, और अश्वत्थामा-द्रोणपुत्र, अनाथ सा हो गया था। कृपाचार्य ने उस समय अश्वत्थामा को केवल शिष्य या भांजे की तरह नहीं, बल्कि पुत्रवत संभाला।

महाभारत युद्ध का अंतिम दिन वह था जब अश्वत्थामा ने चुपके से पांडव शिविर पर हमला कर दिया और निर्दोषों की हत्या की। वह कर्म इतना भीषण था कि इतिहास तक काँप गया। उस समय कृपाचार्य ने भी अश्वत्थामा का साथ दिया, लेकिन उनके हृदय में एक पीड़ा भी रही-वे जानते थे कि यह धर्म के मार्ग से बहुत दूर का कार्य था।

युद्ध के बाद, जब कुरुक्षेत्र वीरों की चिताओं से भर चुका था, तभी एक रात,अश्वत्थामा और कृपाचार्य के बीच संवाद हुआ:

अश्वत्थामा थके हुए स्वर में बोला-"मामा, मैंने सब नष्ट कर दिया। पांडवों के वंशजों तक को जीवित नहीं छोड़ा। क्या मैं धर्म से भटक गया?"

कृपाचार्य ने गहरी साँस ली। उनकी आँखों में दुःख था, पर स्वर में करुणा-"पुत्र, युद्ध पहले ही सब कुछ ले चुका था। तुमने जो किया, वह प्रतिशोध की अग्नि से जन्मा था, धर्म की शीतलता से नहीं। प्रतिशोध कभी भी शांति नहीं लाता। तुमने पांडवों को नहीं, अपने अंतःकरण को परास्त किया है।"

अश्वत्थामा रो पड़ा-"तो क्या मेरे जीवन का शेष केवल श्राप है?"

कृपाचार्य ने उसका कंधा थामा-"श्राप ही नहीं, सीख भी। जो अग्नि तुम्हें जलाती है, वही भविष्य को सावधान करेगी। याद रखो, वंश के विनाश से बड़ा कोई दंड नहीं। और तुम्हें इतिहास इसी रूप में याद रखेगा। पर मैं तुम्हारे साथ हूँ, क्योंकि खून का रिश्ता केवल सुख में नहीं, दुःख में भी निभाया जाता है।"

उस क्षण कृपाचार्य ने साबित किया कि वे केवल कुलगुरु ही नहीं, बल्कि करुणामय आत्मा भी थे। उन्होंने अश्वत्थामा को अकेला नहीं छोड़ा, जबकि सम्पूर्ण संसार उसे दोषी मान चुका था।

महाभारत के बाद कृपाचार्य उन कुछ गिने-चुने योद्धाओं में से थे जो जीवित रहे। वे आगे जाकर परिक्षित-अभिमन्यु पुत्र-के राज्य में राजगुरु बने। इस प्रकार हस्तिनापुर का इतिहास उनके अनुभव और मार्गदर्शन से आगे बढ़ा।

सीख:- कृपाचार्य का जीवन हमें यह सिखाता है कि कर्तव्य कठिन होता है, पर उसे निभाना ही धर्म है। उन्होंने युद्ध भी किया, करुणा भी दिखाई, और संतुलन भी रखा।

सात्यकी (युयुधान)

सात्यकी, जिसे महाभारत में युयुधान भी कहा गया है, यादवकुल का महान योद्धा था। उसका नाम भले ही कर्ण, भीष्म, द्रोण या अर्जुन की तरह बार-बार न लिया जाता हो, लेकिन युद्धभूमि पर उसका पराक्रम कम नहीं था। वह एक ऐसा योद्धा था, जिसने न केवल अपने कुल का मान रखा बल्कि धर्म की रक्षा के लिए अपने जीवन को दाँव पर लगाया।

सात्यकी का जन्म,शूरसेन वंश से था और श्रीकृष्ण का अत्यंत प्रिय सखा व शिष्य रहा। बचपन से ही उसमें वीरता और पराक्रम झलकता था।श्रीकृष्ण ने स्वयं सात्यकी को शस्त्रविद्या सिखाई। कहते हैं कि जब वह धनुष उठाता था तो उसकी भुजाएँ बिजली की तरह चमक उठतीं। कृष्ण ने उसमें केवल युद्ध कौशल ही नहीं, बल्कि धर्म और नीति की शिक्षा भी डाली। कृष्ण और सात्यकि में केवल रक्त का नहीं, विचारों का भी मेल था।

कृष्ण जहां राजनीति और धर्म के ज्ञाता थे, वहीं सात्यकि उसका सशस्त्र विस्तार थे।सात्यकि सदैव कृष्ण के विचारों का पालन करता और उनके आदेशों को धर्म की आज्ञा मानकर चलता।कृष्ण ने कहा था-"सात्यकि, युद्ध में केवल शस्त्र नहीं, विचार भी चलाते हैं।"और सात्यकि ने आजीवन यह वचन निभाया।

"युद्धभूमि में केवल शस्त्र ही नहीं, धैर्य और धर्म भी काम आते हैं"-यह वाक्य सात्यकी अक्सर अपने मन में दोहराता।

किशोर अवस्था में सात्यकि को हस्तिनापुर भेजा गया, जहाँ उन्होंने गुरु द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या की शिक्षा ली। वहीं उनकी मित्रता हुई अर्जुन से, जो आगे चलकर उनके जीवन का सबसे गहरा संबंध बना।अर्जुन की युद्ध-नीति, सात्यकि की आक्रामकता और तीव्र बुद्धि, दोनों की जोड़ी अद्वितीय मानी जाती थी।सात्यकी का विशेष लगाव अर्जुन से था। दोनों में गुरु-शिष्य का भी रिश्ता था, क्योंकि अर्जुन ने भी उसे धनुर्विद्या के कुछ गूढ़ रहस्य सिखाए।सात्यकी, अर्जुन का परम भक्त कहा जाता है। उसने जीवन भर अर्जुन का साथ दिया।

जब महाभारत का युद्ध हुआ, तो उसने बिना हिचकिचाए पांडवों की ओर से युद्ध में भाग लिया।कुरुक्षेत्र के युद्ध में सात्यकी का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा।जब भी अर्जुन को कहीं और जाना होता, सात्यकी उसकी रक्षा में आगे आता।वह अर्जुन का परछाईं योद्धा था।

युद्ध के दौरान उसका सामना कौरवों के अनेक महारथियों से हुआ। उसने भीष्म की सेना को कई बार ध्वस्त किया। भीष्म पितामह जब युद्ध में आगे आए, तो सात्यकि उनके सामने श्रद्धा से झुक गए।बोले-"मैं आपके चरणों में नमन करता हूँ, पर धर्म के लिए तीर चलाना पाप नहीं," कहकर सात्यकि ने युद्ध किया-बिना किसी घृणा के।

अपने पूर्व गुरु के विरुद्ध खड़े होना उनके लिए कठिन था।लेकिन जब गुरु द्रोण ने अभिमन्यु के वध को मूक रूप से स्वीकारा, तो सात्यकि का मन बदल गया-"गुरु वही जो न्याय करे," कहते हुए उन्होंने पूरी शक्ति से आक्रमण किया।

कृपाचार्य से उनका युद्ध,बुद्धि और धैर्य का था।जबकि कृतवर्मा-जो स्वयं यादव कुल से थे-के साथ युद्ध कटुता और अपमान का,"धर्म छोड़कर यदि कोई रक्त-संबंधी भी सामने आए, तो उसे पराजित करना ही मेरा धर्म है," यह कहकर सात्यकि ने कृतवर्मा को धराशायी किया।

जब अर्जुन जयद्रथ को मारने के लिए निकलते हैं, सात्यकि उनका पीछा करते हैं, और पूरे दिन कौरवों की सेना को अकेले संभालते हैं।एक बार भी नहीं रुके, न प्यास, न थकावट-केवल अर्जुन तक पहुँचने की ललक।कौरवों के योद्धाओं ने घेर लिया, लेकिन सात्यकि ने अकेले ही भूरिश्रवा, दुशासन, और दुर्विषह जैसे योद्धाओं को परास्त किया।

भूरिश्रवा ने युद्ध में सात्यकि को घायल कर भूमि पर गिरा दिया था और उन्हें मारने ही वाला था कि अर्जुन ने भूरिश्रवा का हाथ काट दिया। सात्यकि ने भूमि से उठकर भूरिश्रवा का वध कर दिया।

इस घटना पर सभी ने उनकी निंदा की, पर सात्यकि ने कहा-"जो योद्धा रणभूमि में मुझे निष्क्रिय अवस्था में मारना चाहता था, वह धर्म का पात्र नहीं।"

अश्वत्थामा के नरसंहार के बाद जब युद्ध समाप्त हुआ, तो सात्यकि गहरे दुख में चले गए। उन्होंने कृष्ण से कहा-"क्या यही धर्म की विजय है? जहाँ कोई सुखी नहीं?"

यादवकुल में सात्यकी का सबसे बड़ा विरोधी कृतवर्मा था।कृतवर्मा ने दुर्योधन का साथ दिया, जबकि सात्यकी ने पांडवों का।महाभारत युद्ध के बाद जब सब शांत हुआ, तब भी दोनों का वैर शांत न हुआ। यादवकुल के विनाश का एक कारण यही संघर्ष भी बना।

युद्ध के बाद एक बार भोज में सात्यकी और कृतवर्मा के बीच कटु वचन हुए। सात्यकी ने क्रोध में कृतवर्मा का वध कर दिया। इस घटना ने यादवकुल में आग लगा दी, और आपसी संघर्ष ने पूरे वंश को नष्ट कर दिया।कहा जाता है कि महर्षि दुर्वासा के श्राप के कारण यादवों का विनाश

हुआ। कृष्ण के पुत्रों ने मज़ाक में दुर्वासा को अपमानित कर दिया था, और ऋषि ने श्राप दिया कि यादवकुल का अंत आपसी लड़ाई से होगा।

यही श्राप धीरे-धीरे सत्य हुआ। समुद्र किनारे हुए उस भयंकर संघर्ष में सात्यकी भी मारा गया।युद्धभूमि की धूल खाने वाला यह वीर अपने ही कुल के हाथों अंत तक पहुँचा।

"मित्रता जब धर्म से जुड़ जाए, तो वह केवल संबंध नहीं, बल्कि आस्था बन जाती है।"कुरुक्षेत्र में उसके तीरों की गूँज आज भी हमें यह याद दिलाती है -"वीर वह नहीं, जो जीतकर गर्व करे, वीर वह है, जो धर्म के लिए हार भी स्वीकार कर ले।"

सीख:-सात्यकी का जीवन हमें यह सिखाता है कि निष्ठा और धर्म सबसे बड़े शस्त्र हैं।उसने अर्जुन और पांडवों के लिए लड़ाई लड़ी, पर यह लड़ाई केवल मित्रता के कारण नहीं थी। यह युद्ध उसके लिए धर्म और न्याय की रक्षा का प्रश्न था।सात्यकि की कथा यह सिखाती है कि धर्म कभी भी आसान रास्ता नहीं होता।वह पग-पग पर आत्मबलिदान और आत्ममंथन माँगता है।

कृतवर्मा

यादव वंश के महान योद्धाओं में एक नाम था -कृतवर्मा। वह वृष्णि वंश से था और बलराम-श्रीकृष्ण का समकालीन था। जन्म से ही पराक्रमी और शौर्यवान, कृतवर्मा को धनुर्विद्या और युद्धनीति में अपराजेय माना जाता था। वह यादवों की सेना का प्रधान सेनापति बना और उसकी वीरता की गूँज पूरे आर्यावर्त में थी।

लेकिन कृतवर्मा,महाभारत के युद्ध में कौरवों की ओर से लड़ा।कृतवर्मा का बचपन यादवों की परंपरा में बीता। श्रीकृष्ण से उसका गहरा रिश्ता था, किंतु वह हमेशा राजनीति और सामरिक दृष्टि से स्वतंत्र निर्णय लेता था। यादव कुल में सात्यकी और कृतवर्मा की प्रतिद्वंद्विता जगजाहिर थी। सात्यकी जहाँ पांडवों का कट्टर समर्थक था, वहीं कृतवर्मा ने कौरवों का साथ चुना।कहा जाता है कि वह दुर्योधन से प्रभावित था, और उसे यह विश्वास था कि कुरुवंश की सत्ता में रहकर ही यादव कुल का प्रभाव बढ़ सकता है।

महाभारत के युद्ध में कृतवर्मा की भूमिका महत्वपूर्ण रही। वह कौरवों की ओर से एक प्रमुख सेनापति था। कई दिनों तक उसने अपनी सेना के साथ पांडवों को रोके रखा। उसने सात्यकी और भीम जैसे पराक्रमी योद्धाओं से भीषण युद्ध किया।

कृतवर्मा और सात्यकी की शत्रुता युद्धभूमि में भी खुलकर सामने आई। दोनों ही यादव थे, किंतु एक-दूसरे के खून के प्यासे बने हुए थे।

दुर्योधन की पराजय के बाद भी कृतवर्मा का रुख कठोर रहा। उसने युद्ध के बाद अश्वत्थामा और कृपाचार्य के साथ मिलकर रात के अंधेरे में पांडव शिविर पर धावा बोला। उस रात,अश्वत्थामा द्वारा शिविर में प्रवेश कर धृष्टधुम्न,पांडव कुमारों,शिखंडी आदि सभी योध्याओं का अकेले ही नाश कर दिया।कृतवर्मा और कृपाचार्य ही उस हमले का साक्षी और सहभागी थे।

युद्ध के बाद भी कृतवर्मा का जीवन शांत नहीं रहा। यादव वंश का अंत धीरे-धीरे करीब आ रहा था। द्वारका में जब दुर्वासा ऋषि का श्राप साकार हुआ और यादव आपस में मस्त होकर लड़ पड़े, तो कृतवर्मा भी उस विनाशकारी संग्राम का हिस्सा बना।

समुद्र तट पर मदिरा के नशे में यादव आपस में भिड़े। सात्यकी ने क्रोध में आकर कृतवर्मा की वीरता पर व्यंग्य किया और अंततः उसका वध कर दिया।

कृतवर्मा का जीवन विरोधाभासों से भरा था। वह एक महान योद्धा था, परंतु उसने कौरवों का साथ देकर इतिहास में अपने लिए विवादित स्थान बनाया। वह यादव कुल का रक्षक था, किंतु उसी कुल के आंतरिक संघर्ष में मारा गया।

सीख:-उसकी कथा हमें यह सिखलाती है कि पराक्रम और निष्ठा, यदि धर्म से भटक जाएँ, तो अंत में अपने ही घर को जला देती हैं और *"वीरता की सबसे बड़ी कसौटी यही है कि तलवार किसके लिए उठी है - धर्म के लिए या अधर्म के लिए।"*

दुःशासन

दुःशासन... नाम सुनते ही महाभारत का वह दृश्य सामने आ जाता है जिसमें द्रौपदी के वस्त्रहरण का प्रसंग खड़ा है। लेकिन क्या दुःशासन की कथा केवल उसी तक सीमित है? नहीं। उसका जीवन, उसका व्यक्तित्व, उसका गर्व, उसकी क्रूरता और उसकी मृत्यु-सब एक बड़ी सीख छोड़ते हैं।

कौरवों में जन्मा दुःशासन, दुर्योधन का सबसे प्रिय भाई था। गांधारी ने जब सौ पुत्रों को जन्म दिया तो उनमें दूसरा क्रम था-दुःशासन का। वह शुरू से ही दुर्योधन का दाहिना हाथ था। भाई के हर अच्छे-बुरे काम में उसके साथ।

बचपन में जब द्रोणाचार्य ने हस्तिनापुर के राजकुमारों को शिक्षा दी, तब दुःशासन ने भी अस्त्र-शस्त्र चलाने की विद्या सीखी। लेकिन जहाँ युधिष्ठिर में धैर्य था, भीम में बल था, अर्जुन में एकाग्रता थी, वहीं दुःशासन में जल्दबाजी और घमंड अधिक था। द्रोणाचार्य के सामने वह बार-बार अपने बड़े भाई दुर्योधन की शक्ति का बखान करता।

"जब भाई की अंधभक्ति, धर्म से बड़ी हो जाए,तो न्याय हार जाता है।"-दुःशासन का जीवन इसी पंक्ति की मिसाल था।

जुए का कक्ष-महाभारत का वह निर्णायक मोड़। युधिष्ठिर एक-एक कर सबकुछ हारते गए-राज्य, धन, स्वयं को और अंत में द्रौपदी को भी। दुर्योधन ने आदेश दिया-"दुःशासन,द्रौपदी को सभा में लाओ।"

और दुःशासन ने बिना एक पल गँवाए आदेश मान लिया। सबके सामने द्रौपदी का केश पकड़कर घसीटता हुआ सभा में ले आया। वह गर्व से बोला-"अरी दासी, अब तू हमारे महल की दासी है। तेरे पाँच पति अब दास बन चुके हैं।"

सभा में मौन छा गया। किसी ने रोका नहीं। भीष्म, कृपाचार्य, द्रोण जैसे महर्षि भी चुप रहे। केवल द्रौपदी की आँखों से अग्नि बरस रही थी।

तभी दुःशासन ने वह कुकृत्य किया जिसे महाभारत का सबसे बड़ा कलंक कहा गया-वह द्रौपदी के वस्त्र उतारने बढ़ा। परंतु श्रीकृष्ण की कृपा से द्रौपदी के वस्त्र अनंत होते गए। दुःशासन पसीना-पसीना हो गया, पर वस्त्र का अंत न हुआ।

सभा में गूँज उठी द्रौपदी की शपथ-"हे कौरवों, इस सभा का हर मौन अपराधी है। और दुःशासन, तेरा रक्त तब तक धरती पर शांति नहीं पाएगा जब तक भीम अपने हाथों से तेरी छाती चीरकर उसे न पी ले।"यह शाप, यह प्रतिज्ञा, भविष्य का विधान बन गई।

युद्धभूमि में दुःशासन ने अपनी वीरता दिखाई। वह केवल भाई का अनुयायी ही नहीं था, बल्कि एक कुशल योद्धा भी था। उसने कई बार भीम और अर्जुन का सामना किया। परंतु उसके गर्व और पाप की परछाई हर जगह पीछे रही।

कुरुक्षेत्र की उस भयानक सन्ध्या में जब भीम ने उसे रणभूमि में देखा, तो उसकी आँखों में वही ज्वाला जल उठी जो द्रौपदी की सभा में देखी थी।भीम ने द्रौपदी की प्रतिज्ञा याद कर गरजते हुए कहा-"दुःशासन,आज

तेरे पापों का हिसाब होगा। यह भीम की प्रतिज्ञा है कि तेरे रक्त से ही द्रौपदी के अपमान का बदला चुकाया जाएगा।"

दुःशासन ने भी पूरी शक्ति से युद्ध किया। वह गरजता रहा-"मैं दुर्योधन का भाई हूँ, मुझे कोई हरा नहीं सकता।"लेकिन यह युद्ध धर्म और अधर्म का था।भीम ने अपने गदा प्रहार से उसका वक्ष फाड़ डाला। और फिर उसने वही किया जिसकी प्रतिज्ञा ली थी-उसका रक्त पिया। युद्धभूमि में यह दृश्य देखकर सब कांप उठे।

कुरुक्षेत्र की रेत लाल हो गई। और द्रौपदी की शपथ पूर्ण हुई।दुःशासन की मृत्यु केवल एक व्यक्ति का अंत नहीं थी। वह अन्याय, क्रूरता और स्त्री-अपमान के अंत का प्रतीक थी।

दुःशासन ने जीवनभर धर्म को नहीं पहचाना। उसने केवल भाई की अंधभक्ति में पापों का साथ दिया।और अंत में वही हुआ जो होना था-अहंकार चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, न्याय की एक पुकार से चूर हो जाता है।

सीखः-दुःशासन की कथा हमें यही सिखाती है कि जब कोई स्त्री अपमानित होती है, तब उसका आक्रोश ब्रह्मास्त्र से भी भारी हो जाता है। और जब कोई पुरुष धर्म से मुँह मोड़कर केवल रिश्तों की अंधभक्ति करता है, तो उसका अंत निश्चित हो जाता है।

कीचक

मत्स्य देश की नगरी विराट उस समय अपनी सम्पन्नता, वीरता और सांस्कृतिक वैभव के लिए प्रसिद्ध थी। महाराज विराट एक न्यायप्रिय और उदार राजा थे। लेकिन उनके राज्य में एक ऐसा व्यक्ति था जो उनके साम्राज्य का सेनापति होते हुए भी अन्याय और अहंकार का प्रतीक बन चुका था। वह था कीचक।

कीचक महारानी सुदेष्णा का भाई था। विराट के दरबार में उसकी स्थिति किसी सेनापति से कहीं अधिक थी। क्योंकि महारानी का भाई होना ही उसे असाधारण शक्ति और अधिकार प्रदान करता था। इसीलिए वह स्वयं को अजेय समझता था। उसके पास अपार शारीरिक बल था, युद्ध

कौशल में दक्षता थी, और अपने इस बल के अहंकार में वह किसी को भी अपमानित करने से नहीं चूकता था।

उसी समय पांडव अपने अज्ञातवास का अंतिम वर्ष बिताने मत्स्य देश पहुंचे। उन्होंने स्वयं को पहचान छिपाकर अलग-अलग रूपों में रखा। युधिष्ठिर ने कंक नाम से महाराज विराट के यहाँ पासे खेलना शुरू किया, भीम ने बलराम नामक रसोइये का रूप लिया, अर्जुन ने बृहन्नला के रूप में राजकुमारी उत्तरा को नृत्य-गीत सिखाने का दायित्व लिया, नकुल ने अश्वशाला में और सहदेव ने गोशाला में काम सँभाला। द्रौपदी ने भी रानी सुदेष्णा की दासी बनकर अपनी पहचान छिपा ली।

यहीं से कहानी की असली परीक्षा शुरू हुई।

एक दिन कीचक की दृष्टि द्रौपदी पर पड़ी। उसकी सुंदरता ने कीचक को भीतर तक विचलित कर दिया। द्रौपदी को देखकर उसने मन ही मन ठान लिया कि चाहे जैसे भी हो, उसे प्राप्त करेगा। यही उसकी सबसे बड़ी भूल थी, क्योंकि उसने यह नहीं समझा कि द्रौपदी केवल एक स्त्री नहीं, बल्कि पांच महावीर पांडवों का सम्मान और आत्मा थी।कीचक ने रानी सुदेष्णा से कहा-"बहन, यह दासी अद्वितीय रूपवती है,इसे मेरी सेवा में भेज दो।"

सुदेष्णा पहले तो हिचकिचाई, क्योंकि उसने भी द्रौपदी के चेहरे पर एक दिव्यता देखी थी। लेकिन भाई की जिद के आगे वह झुक गई। उसने एक दिन बहाने से द्रौपदी को कहा-"वहां मेरे भाई के कक्ष में जाओ और उसके लिए मदिरा ले आओ।"द्रौपदी काँप उठी। उसने हाथ जोड़कर विनम्रता से कहा-"रानी, मैं एक साधारण स्त्री हूँ। परपुरुष के पास जाना मेरे व्रत और मर्यादा के विपरीत है। कृपया मुझे क्षमा कीजिए।"लेकिन सुदेष्णा ने दबाव डालकर उसे भेजा।

जैसे ही द्रौपदी कीचक के सामने पहुंची, वह उसे देखकर मदहोश हो उठा। उसने द्रौपदी को छूने की चेष्टा की। द्रौपदी क्रोधित होकर बोली-"अरे मूर्ख, मैं पांडवों की पत्नी हूँ। मुझे अपमानित करने का अर्थ है स्वयं

को विनाश के मार्ग पर ले जाना।""स्त्री का अपमान करना, स्वयं विनाश का द्वार खोलना है।"

लेकिन कीचक के कानों पर जूँ तक न रेंगी। वह अहंकार से बोला- "यहाँ पांडव नहीं हैं। यहाँ केवल मैं हूँ, विराट का सेनापति। कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"द्रौपदी डर और क्रोध से काँपती हुई महाराज विराट के सभा भवन में पहुँची। उसने सबके सामने न्याय की गुहार लगाई।

सभा में बैठे सभी लोग कीचक की शक्ति और रानी सुदेष्णा के भाई होने के कारण चुप रहे। किसी में इतना साहस न था कि कीचक के विरुद्ध बोले। द्रौपदी ने बार-बार पुकारा, लेकिन कोई उसकी मदद को आगे न आया।"जिस सभा में सब मौन हो जाएँ, वहाँ अन्याय की आवाज और ऊँची गूंजती है।"

तब भीम का हृदय क्रोध से भर गया। लेकिन अज्ञातवास का व्रत उसे रोक रहा था। वह सीधे-सीधे प्रकट नहीं हो सकते थे। फिर भी उसने मन ही मन प्रण लिया कि द्रौपदी का अपमान करने वाले कीचक को अब जीवित नहीं छोड़ेगा।

द्रौपदी रोते-रोते भीम के पास पहुँची। उसने कहा-"यदि आज मेरा सम्मान नहीं बचा तो यह जीवन ही व्यर्थ है। भीम, तुम्हें मेरे लिए कुछ करना होगा।"भीम ने उसकी आँखों में देखते हुए कहा-"पंचाली, मैं जानता हूँ। आज वह मर्यादा लांघ गया है। आज वह प्राणों से हाथ धोएगा। तू चिंता मत कर। बस मेरी योजना के अनुसार काम कर।उन्होंने तय किया कि द्रौपदी कीचक को एकांत में बुलाएगी और वहां भीम उसका वध करेंगे।भीम के क्रोध में वह आग थी, जो अन्याय की हर दीवार को राख कर देती ।

रात्रि का समय था। कीचक मदहोश होकर द्रौपदी के पीछे-पीछे सभा के नाट्यगृह में पहुँचा। उसने सोचा, आज वह अपनी इच्छा पूरी कर लेगा। लेकिन जैसे ही वह अंदर गया, वहां उसका सामना स्वयं भीम से हुआ।भीम का रूप उस समय किसी नरसिंह से कम न था। उसके क्रोध से अग्नि की ज्वाला भड़क रही थी। उसने गरजते हुए कहा-"दुष्ट, तूने द्रौपदी का अपमान किया है। अब तेरी अंतिम घड़ी आ चुकी है।"

कीचक भी सेनापति था, वह भी बलशाली था। “बल कितना भी हो, जब वह अहंकार से जुड़ जाए तो स्वयं के पतन का कारण बनता है।

दोनों के बीच भयंकर युद्ध छिड़ गया। नाट्यगृह की दीवारें हिलने लगीं। कीचक ने पूरी शक्ति लगाई, लेकिन भीम का क्रोध देवताओं की शक्ति बन चुका था।

आखिरकार भीम ने कीचक को पकड़ा और उसे धराशायी कर दिया। उसकी हड्डियाँ चकनाचूर हो गईं। क्षणभर में मत्स्य देश का सेनापति शव बनकर पड़ा था।द्रौपदी ने राहत की साँस ली। उसने भीम को प्रणाम करते हुए कहा -आज मेरे सम्मान की रक्षा हुई। आज स्त्रीत्व की मर्यादा बची।

कीचक की मृत्यु की खबर पूरे विराट नगर में फैल गई। लोग फुसफुसाने लगे -“जिसकी शक्ति पर सभी चुप रहते थे, वह भी अंततः न्याय के हाथों से बच नहीं सका।”

सीखः-यह प्रसंग केवल द्रौपदी का अपमान मिटाने वाला नहीं था, बल्कि यह संदेश भी था कि अत्याचार चाहे कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, न्याय के सामने उसका अंत निश्चित है।“कीचक का वध केवल एक व्यक्ति का अंत नहीं था, यह पांडवों की अडिग मर्यादा का आरंभ था।

रुक्मी

विदर्भ देश का राजा भीष्मक, जिसकी पुत्री थी रुक्मिणी-अत्यंत रूपवती, गुणवान और शिवभक्त थी। उसका भाई था-रुक्मी।

रुक्मी का स्वभाव बिल्कुल भिन्न था। वह महत्वाकांक्षी था, शक्ति का लोभी और अहंकारी भी।

जहाँ रुक्मिणी का मन भगवान कृष्ण में रमा था, वहीं रुक्मी चाहता था कि उसकी बहन का विवाह चेदि नरेश शिशुपाल से हो, जिससे उसका अपना साम्राज्यिक गठबंधन मज़बूत हो जाए-"राजनीति जब रिश्तों पर हावी हो जाए, तब परिवार टूट जाता है।"

रुक्मी ने रुक्मिणी की इच्छा को दबा दिया। लेकिन रुक्मिणी ने कृष्ण को संदेश भेज दिया कि वह उसे अपहरण करके ले जाए।

कृष्ण ने रुक्मिणी का रणहरण किया। सबके सामने रथ पर बैठाकर उसे द्वारका ले आए।सारा विदर्भ थर्रा उठा। शिशुपाल अपमानित हुआ। लेकिन सबसे अधिक आहत रुक्मी था।

वह गरज उठा-"मैं अपनी बहन का अपहरण सह नहीं सकता। कृष्ण को हराकर ही दम लूँगा।"वह सेना लेकर कृष्ण के पीछे दौड़ा। भीषण युद्ध हुआ,रुक्मी पराजित हुआ और कृष्ण ने उसे जीवित छोड़ते हुए वचन लिया कि वह कभी विदर्भ नहीं लौटेगा।यह रुक्मी के जीवन का पहला बड़ा मोड़ था।

रुक्मी ने कुण्डिनपुर नामक नगर बसाया और वहीँ रहने लगा।उसने द्वारका और यादवों से वैर पाल लिया।

युद्ध और सत्ता के प्रति उसका आकर्षण कभी खत्म नहीं हुआ।उसने अपनी पुत्री का विवाह कौरवों से कर दिया ताकि पांडवों और यादवों के विरुद्ध एक मज़बूत संबंध कायम कर सके।

महाभारत युद्ध छिड़ा।वह अपनी सेना लेकर पहुँचा, लेकिन दुर्योधन और पांडव,दोनों ने उसे अस्वीकार कर दिया।

पांडवों ने कहा-"तुम कृष्ण के विरोधी रहे हो।

"कौरवों ने कहा-"तुम कभी स्थिर नहीं हो, हम तुम पर भरोसा नहीं कर सकते।"

रुक्मी अपमानित होकर वापस लौट गया।

युद्ध समाप्त हुआ।पांडव और कृष्ण विजयी होकर लौटे।लेकिन रुक्मी का हृदय अब भी शांति नहीं पा सका।

वह जुआ खेलने का शौकीन था।एक बार उसने बलराम के साथ पासे खेले।वह छल से जीतने लगा।

बलराम, जो सत्यप्रिय और क्रोधी स्वभाव के थे, यह सहन न कर सके।उन्होंने गदा उठाई और रुक्मी का वध कर दिया,रुक्मी वहीं समाप्त हो गया।

सीखः-रुक्मी की मृत्यु किसी रणभूमि में नहीं, किसी महायुद्ध में नहीं, बल्कि जुए के पांसों की बाज़ी में हुई।उसके अंत की गाथा एक छोटे से छल पर समाप्त हो गई।

तक्षक

बहुत समय पहले की बात है। समय जब धरती पर राजाओं का शासन था और देवताओं, असुरों और नागों की उपस्थिति केवल कथाओं का हिस्सा नहीं, बल्कि दिनचर्या का हिस्सा हुआ करती थी। यह वह समय था जब तक्षक नाग, नाम का एक ऐसा नागराज था, जिसकी कहानी आज भी रहस्य, बदले और भाग्य की लहरों से होकर गुजरती है।

तक्षक, नागों की उस महान जाति से थे, जो कश्यप ऋषि और उनकी पत्नी कद्रू के वंशज थे। उनका नाम आते ही एक ऐसे नाग का चित्र उभरता है जो तेज़, साहसी और सम्मानित था। वह केवल विषधर नहीं था, बल्कि एक राजा था-नागों का राजा।

तक्षक, पाताल लोक का निवासी था लेकिन समय-समय पर पृथ्वी पर आता-जाता था, खासकर जब कोई बड़ा युद्ध, विनाश या धर्म से जुड़ा कार्य सामने होता।

तक्षक का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ, महाभारत की उस कथा से, जिसमें राजा परीक्षित की मृत्यु हुई थी। लेकिन उससे पहले भी, तक्षक एक महान योद्धा और तपस्वी के रूप में कई बार मानव इतिहास में उतर चुका था।

बहुत शुरू की बात है की तक्षक और अर्जुन का सामना युद्धभूमि में कुरुक्षेत्र से पहले ही हो चुका था। जब अर्जुन ने खांडववन को जलाया था, तब तक्षक वहीं अपने परिवार के साथ निवास कर रहे थे। यह खांडववन,अग्निदेव को अर्पित करने के लिए जलाया गया था।तक्षक उस दिन वहाँ नहीं था, पर उसके परिवार-पत्नी और पुत्र-उस अग्नि की भेंट चढ़ गए। इस विनाश का ज़िम्मेदार कौन था-अर्जुन और कृष्ण।

तक्षक ने उसी दिन मन ही मन शपथ ली थी कि वह इस अपमान का प्रतिशोध अवश्य लेगा। यह उसका व्यक्तिगत युद्ध बन चुका था। हालांकि समय ने उसे स्थगित कर दिया, लेकिन न तो उसकी स्मृति मिट सकी, न क्रोध ठंडा हुआ।

तक्षक स्वयं कुरुक्षेत्र युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से शामिल नहीं था, लेकिन वह बहुत करीब से सब देख रहा था। वह नागों का राजा था, इसलिए तटस्थ रहने का निर्णय लिया - संभवतः समय का इंतज़ार करते हुए-उसने देखा कि कैसे एक-एक करके सारे योद्धा - भीष्म, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा, अभिमन्यु, घटोत्कच, जयद्रथ - युद्ध में समाप्त हो गए।

उसने देखा कि कैसे धर्म और अधर्म, दोनों ओर खून बहा।उसने देखा कि उस युद्ध ने भारतवर्ष के संतुलन को हिला कर रख दिया।

और फिर, तक्षक ने एक लंबा इंतजार किया-राजा परीक्षित के जन्म तक।

राजा परीक्षित, अर्जुन के पोते थे-अभिमन्यु और उत्तरा के पुत्र। वे एक धर्मनिष्ठ, न्यायप्रिय और वीर राजा माने जाते थे। लेकिन एक दिन, एक साधु के ध्यान में विघ्न डालने की भूल कर बैठे। ऋषि शमी के पुत्र श्रृंगी ने क्रोधित होकर उन्हें श्राप दे दिया-"सातवें दिन तुझे एक नाग डसेगा और तू मृत्यु को प्राप्त होगा।"

परीक्षित को इस श्राप की गंभीरता का एहसास हो गया। उन्होंने हर उपाय किया-अपने महल को लोहे से घेरवाया, ब्राह्मणों से पाठ कराया, तांत्रिकों को बुलाया,लेकिन भाग्य तो भाग्य है।

सातवें दिन, वह क्षण आया जब तक्षक स्वयं वहाँ पहुँचा।तक्षक ने परीक्षित को मारने से पहले, कुशल ब्राह्मण के रूप में स्वयं को छिपा लिया। वह इतना शक्तिशाली और मायावी था कि सबसे पहले तो उसने उन ब्राह्मणों को भ्रमित कर दिया जो राजा की रक्षा कर रहे थे। फिर, एक फल में छिपकर वह परीक्षित के पास पहुँचा और जैसे ही राजा ने फल को हाथ में लिया, तक्षक नाग बनकर बाहर निकला और उन्हें डस लिया।एक पल में, राजा परीक्षित की मृत्यु हो गई।तक्षक ने अपना प्रतिशोध पूरा कर लिया।

जब राजा परीक्षित की मृत्यु हुई, तब उनके पुत्र जनमेजय ने प्रण लिया कि वह नागों को समाप्त कर देगा। उसने एक विशाल 'सर्पसत्र' (नाग यज्ञ) का आयोजन किया, जहाँ लाखों नाग जलते हवनकुंड में गिरते गए।तक्षक को भी यज्ञ में खींचा जाने लगा, लेकिन तभी आस्तिक ऋषि आए। आस्तिक स्वयं एक ब्राह्मण और नाग माता की संतान थे। उन्होंने जनमेजय को शांत किया और यज्ञ रोकने का आग्रह किया।

जनमेजय ने यज्ञ रोक दिया। इस प्रकार तक्षक की रक्षा हुई, और एक भीषण विनाश से नाग जाति बच गई।

यहाँ यह सवाल उठता है-क्या तक्षक केवल एक क्रोधित नाग था, जिसने बदला लिया?

या फिर वह भी भाग्य की उस चक्र में था जहाँ सब किसी न किसी कर्म के कारण जुड़ते हैं?

यदि अर्जुन ने खांडववन न जलाया होता,यदि तक्षक का परिवार न मारा गया होता,यदि परीक्षित साधु का अपमान न करते,यदि श्रृंगी श्राप न देता-तो क्या तक्षक एक शांत नागराज ही रहता?

शायद-"हाँ"।

कहते हैं, तक्षक आज भी जीवित है-शेषनाग की परछाई बनकर,पाताल लोक में, अपनी समाधि में।वह कभी-कभी सतह पर आता है-सपनों में, रहस्यों में, या लोककथाओं में।और हर बार, उसकी कहानी हमें यही बताती है-कि जो अग्नि हम जलाते हैं, वह किसी दिन लौटकर हमें भी छू सकती है।

तक्षक केवल एक नाग नहीं था-वह प्रतीक था उस अनकहे दुख का, जो कभी वाणी नहीं बनता, बस विष बनकर हृदय में उतर जाता है।

सीखः-तक्षक हमें यह सिखाता है कि कभी-कभी हम केवल प्रतिक्रियाएँ होते हैं - दूसरों के कर्मों की।क्रोध में लिया गया बदला, पीढ़ियों तक चलता है।हर कर्म का परिणाम होता है, भले वह तत्काल न दिखे।धर्म और अधर्म की रेखा स्पष्ट नहीं होती - बस दृष्टिकोण बदलते हैं।माफ़ी और विवेक, युद्ध से कहीं बड़ी शक्ति है।

परछाइयाँ (महाभारत के गुमनाम महिला चरित्रों की अमर गाथा)

कौरव और पांडव दोनों पक्षों की असंख्य स्त्रियाँ थीं जिन्होंने अपने पतियों, पुत्रों और भाइयों को रणभूमि में भेजते समय आँखों में आँसू छिपाकर केवल आशीर्वाद दिया। कुछ ने वैधव्य सहा, कुछ ने पुत्रहीनता का दर्द झेला और कुछ ने अपने गर्भ में भविष्य को बचाए रखा।

महाभारत की गाथा जहाँ वीर पुरुषों के युद्ध और पराक्रम से भरी हुई है, एवं वहीं द्रौपदी, कुंती, गांधारी जैसी प्रमुख नायिकाओं का भी वर्णन भी विस्तार से मिलता है। परंतु इस महान ग्रंथ में-अनगिनत अनाम स्त्रियों का त्याग, बलिदान और समर्पण भी छिपा है। ये महिलाएँ भले ही इतिहास के पन्नों में नाम से न दर्ज हों, पर उनका योगदान किसी महायोद्धा से कम नहीं था।

लेखक:-नवीन कुमार नवीन

भानुमति

महाभारत की विराट कथा में अक्सर पुरुष योद्धाओं का ही नाम उभरता है-भीष्म, द्रोण, कर्ण, अर्जुन, कृष्ण, दुर्योधन। लेकिन इन सबके बीच एक स्त्री भी थी, जो महाभारत के सबसे कठिन प्रसंगों की साक्षी बनी। उसका नाम था-"भानुमति"।

भानुमति विदर्भ नरेश भीष्मक की पुत्री थी। वही भीष्मक, जिनके घर में रुक्मिणी का भी जन्म हुआ था। रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से हुआ, और उसी वंश में भानुमति का लालन-पालन हुआ। सौंदर्य, शील और प्रतिभा में वह अद्वितीय मानी जाती थी।

भानुमति सौंदर्य, शील और सरलता की प्रतिमूर्ति मानी जाती थी। कहते हैं कि उसका मुखकमल, सूर्य की भांति दमकता था, और उसका नाम भी उसी तेज का द्योतक था-भानु अर्थात् प्रकाश।

उसका स्वयंवर हुआ। बड़े-बड़े राजकुमार, राजा, योद्धा उपस्थित हुए। पर दुर्योधन ने, जो महाभारत का मुख्य खलनायक माना जाता है, उस सभा में जाकर उसे बलपूर्वक उठा लिया। कुछ कथाओं में कहा गया है

कि कर्ण ने दुर्योधन की सहायता की और इस प्रकार भानुमति, दुर्योधन की पत्नी बनी।

कहानी में यह प्रसंग विवादास्पद है, पर इससे यह ज़ाहिर होता है कि भानुमति को दुर्योधन ने केवल एक स्त्री नहीं, बल्कि अपने अहंकार और सत्ता के प्रतीक के रूप में चुना।

भानुमति का स्वभाव शांत और सौम्य था। वह दुर्योधन जैसी कठोर प्रवृत्ति वाले पुरुष की पत्नी बनी, लेकिन उसका जीवन कभी आसान नहीं रहा। भानुमति ने दुर्योधन के क्रोध और महत्वाकांक्षा के बावजूद घर को सँभाले रखा। वह दुर्योधन से प्रेम करती थी, परंतु भीतर-भीतर उसके कर्मों से व्यथित भी रहती थी।

उसका महल वैभवशाली था, पर उसके जीवन में वैभव से अधिक चिंता थी। महल में गूँजते शंख और नगाड़े उसे शांति नहीं देते थे, बल्कि आने वाले तूफ़ान की आहट सुनाते थे।

महाभारत का सबसे बड़ा कलंक था पासे का खेल। जब दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि की सहायता से पांडवों को छलपूर्वक हराया और द्रौपदी का अपमान किया, उस समय भानुमति भी राजमहल में ही थी।द्रौपदी को सभा में खींचकर लाया गया, भानुमति ने अपने महल से यह दृश्य सुना। वह काँप उठी।

उसने मन ही मन कहा-जिस महल में स्त्रियों का सम्मान सुरक्षित न हो, वहाँ विजय भी अपमान से बड़ी नहीं हो सकती।

वह द्रौपदी को अपनी बहन मानती थी। लेकिन पति का विरोध करने की शक्ति उसमें न थी। उसकी विवशता ही उसकी सबसे बड़ी पीड़ा थी।

जैसे-जैसे महाभारत का युद्ध निकट आया, भानुमति का मन और बेचैन होता गया। उसने दुर्योधन से कहा भी-"युद्ध केवल जीतने का साधन नहीं है, यह अपनों को खोने का मार्ग भी है।"

दुर्योधन ने उसकी बात को नकार दिया। उसने कहा-"हे प्रिये, यह धर्मयुद्ध है। कौरव कुल का मान रखना ही मेरा कर्तव्य है।"भानुमति मौन रह गई। कभी-कभी मौन भी चीख से बड़ा होता है।

कुरुक्षेत्र का युद्ध आरंभ हुआ। भानुमति ने महल की ऊँची दीवारों से युद्धभूमि की धूल और रक्त की गंध महसूस की।वह हर दिन प्रार्थना करती-"हे देवताओं, युद्ध का अंत हो। चाहे हार हो या जीत, पर यह रक्तपात रुक जाए।"

लेकिन युद्ध रुकने वाला न था। उसने देखा कि उसके पति दुर्योधन के साथ-साथ उसके प्रिय मित्र कर्ण, उसका भाई दूःशासन, और अनगिनत कौरव बंधु एक-एक करके मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं।हर मृत्यु भानुमति के हृदय को छलनी कर देती थी।

महाभारत के युद्ध में भानुमति की भूमिका प्रत्यक्ष नहीं रही, किंतु उसके जीवन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। जब उसका पुत्र लक्ष्मणकुमार युद्ध में अभिमन्यु के हाथों मारा गया, तो उसका हृदय शोक से भर गया।मातृत्व की यह वेदना किसी भी स्त्री के लिए असहनीय है।

भानुमति ने अपने आँसुओं को छुपाकर दुर्योधन का मनोबल बढ़ाने का प्रयास किया। वह जानती थी कि युद्धभूमि में मन का टूटना ही सबसे बड़ा पराजय है।

अंततः भीम ने गदा युद्ध में दुर्योधन की जाँघ तोड़ दी। जब यह समाचार भानुमति तक पहुँचा, उसकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली।वह रणभूमि की ओर दौड़ी। वहाँ उसने दुर्योधन को अंतिम साँसें लेते देखा।

दुर्योधन ने काँपती आवाज़ में कहा-"प्रिय, मैंने सत्ता के पीछे भागकर सब कुछ खो दिया।"

भानुमति ने उसका सिर अपनी गोद में रखा और कहा-"स्वामी, आपसे मैंने वैभव नहीं, साथ माँगा था। पर आज समझ आया, सत्ता से बड़ा प्रेम होता है और प्रेम से बड़ी करुणा।"

महाभारत का युद्ध जीतकर पांडव हस्तिनापुर लौटे। पर भानुमति के लिए वह जीत केवल शोक बन गई।उसका महल सुनसान हो गया। उसके भाई, उसके सगे, उसका पति-सब कुरुक्षेत्र में समा गए।

वह महल में अकेली बैठती और मन ही मन सोचती-"विजयश्री उन स्त्रियों के आँसुओं से बड़ी नहीं हो सकती, जिनके सिंदूर उजड़ गए।"

कुछ ग्रंथों में कहा जाता है कि भानुमति ने शेष जीवन व्रत और तपस्या में बिताया। वह कौरव कुल के अंत की साक्षी बनी और उस युग की सबसे बड़ी पीड़ा को अपने भीतर सँजोए रही।

वह युद्ध जिसने अर्जुन, भीम, दुर्योधन और कर्ण को अमर बना दिया, उसी युद्ध ने भानुमति जैसी स्त्रियों की करुणा को भी अमर कर दिया।

"महाभारत की राख में सिर्फ़ वीरों की गाथाएँ नहीं, स्त्रियों की चीखें भी दबी हुई हैं।"

भानुमति ने अपने मौन से यह साबित किया कि कभी-कभी मौन भी इतिहास लिख देता है। कहा जाता है कि कृष्ण के कहने पर भानुमति ने अर्जुन से विवाह किया, ताकि उसके बच्चों को सुरक्षा मिल सके। भानुमति की पुत्री लक्ष्मणा का विवाह कृष्ण के पुत्र साम्ब से हुआ।

इस प्रकार, भानुमति ने विभिन्न राजाओं और वीरों के साथ संबंध स्थापित करके एक बड़ा कुनबा बना लिया। इसलिए यह कहावत प्रचलित हुई: “कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा, भानुमति ने कुनबा जोड़ा।” इसका अर्थ है-बेमेल चीज़ों को जोड़कर एक समूह बनाना।

सीख:यह कहावत और भानुमती का जीवन, हमें यह सिखाती है कि कभी-कभी बेमेल चीज़ों को जोड़कर भी एक मजबूत समूह बनाया जा सकता है। हालांकि, यह स्थिति अस्थिर और जटिल हो सकती है, लेकिन यह भी संभव है। इससे यह संदेश मिलता है कि परिस्थितियों के अनुसार लचीलापन और समझदारी से काम लेना चाहिए।

दु:शाला

दु:शाला, महाभारत की वह पात्र है जिसे अक्सर लोग भूल जाते हैं। परंतु उसके जीवन में उतना ही उतार-चढ़ाव था जितना किसी भी योद्धा के।

वह कौरवों की इकलौती बहन थी-धृतराष्ट्र और गांधारी की संतान। एक बहन, जो सौ भाइयों के बीच पली-बढ़ी।

"सौ भाइयों की बहन होना किसी भी स्त्री के लिए सुरक्षा का वचन होना चाहिए, लेकिन महाभारत की आँधियों ने उसके लिए यह बंधन ही बोझ बना दिया।"

दु:शाला बचपन से ही कौरव महल की लाडली थी। दुर्योधन, दुःशासन और उसके अन्य भाई उसकी हर इच्छा पूरी करने में तत्पर रहते। गांधारी के नेत्रबद्ध जीवन में दु:शाला का अस्तित्व माँ के लिए सांत्वना था।

उसका विवाह सिंधु देश के राजा जयद्रथ से हुआ। यह विवाह राजनीतिक गठबंधन था, परंतु एक राजकुमारी के रूप में उसने इसे अपनी नियति मान लिया।जयद्रथ बलशाली और महत्वाकांक्षी था। लेकिन भरी सभा में जब उसने द्रौपदी का अपमान करने का दुस्साहस किया, तब दु:शाला का स्त्री-हृदय भीतर से टूट गया।

"जब पति अपमान का कारण बनता है, तब स्त्री का गर्व सबसे पहले बिखरता है।"

जयद्रथ का पांडवों से शत्रुत्व जगजाहिर था। विशेषकर कुरुक्षेत्र युद्ध में उसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। उसने अभिमन्यु के वध में सहयोग किया और चक्रव्यूह से पांडवों को रोकने में मुख्य भूमिका निभाई,परंतु उसी जयद्रथ की मृत्यु अर्जुन के हाथों हुई। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी कि सूर्यास्त से पहले वह जयद्रथ का वध करेगा, और उसने कृष्ण की सहायता से वह प्रतिज्ञा पूरी भी की।

उस क्षण दु:शाला विधवा बन गई। उसके आँचल से सहारा छिन गया, और उसका पुत्र अपने पिता की मृत्यु का प्रत्यक्ष साक्षी बना।

महाभारत की सबसे करुण घटनाओं में से एक, दु:शाला और उसके पुत्र का प्रसंग है। युद्ध के बाद जब भीम ने उसके पुत्र का वध कर दिया, तब दु:शाला शोक से पागल-सी हो उठी।

उसने रोते हुए युधिष्ठिर से प्रार्थना की-"मैं सौ भाइयों की बहन हूँ, मेरा पति मारा गया, मेरा पुत्र मारा गया। अब मेरे जीवन का सहारा कौन है? यदि मेरी रक्षा नहीं हुई तो यह इतिहास में पांडवों के नाम पर कलंक होगा।"

उसकी करुण पुकार ने युधिष्ठिर का हृदय पिघला दिया। उन्होंने दु:शाला और उसकी संतान को सम्मानपूर्वक संरक्षण दिया।"युद्ध के बाद

विजय का सबसे बड़ा काम शांति और करुणा से घरों को फिर से बसाना होता है।"

दु:शाला का जीवन स्त्रियों की उस पीड़ा का प्रतीक है जिसे युद्ध ने हमेशा झेला है।

वह सौ भाइयों की बहन थी, लेकिन युद्ध ने उसे भाई, पति और पुत्र सबकुछ छीन लिया।

दु:शाला ने शेष जीवन तपस्विनी बनकर बिताया। उसका मन महलों और वैभव से हटकर शांति और भक्ति की ओर चला गया। वह अपने पुत्र की स्मृति और पति की छवि के साथ अंत तक जीवित रही।

सीखः-दु:शाला की कथा से हमें यह सीख मिलती है कि-"युद्ध में जीत या हार से अधिक दुखद होता है परिवारों का बिखरना।"वह भले ही युद्धभूमि में हथियार लेकर न उतरी हो, लेकिन उसके आँसू किसी भी युद्ध की सबसे बड़ी कीमत थे।

सुभद्रा

सुभद्रा का नाम सुनते ही मन में एक ऐसी स्त्री की छवि उभरती है, जो न केवल सौंदर्य और कोमलता का प्रतीक थी, बल्कि बुद्धिमत्ता और धर्म का भी आधार बनी। वह वासुदेव कृष्ण और बलराम की बहन थीं, और यदुवंश की राजकुमारी होने के साथ-साथ आगे चलकर पांडवों के इतिहास की भी धुरी बनीं।

द्वारका का राजमहल उस समय आभा और ऐश्वर्य से भरा था। यदुवंश की महिमा पूरे आर्यावर्त में फैली हुई थी। सुभद्रा का जन्म हुआ तो पूरे द्वारका में उत्सव मनाया गया। कृष्ण अपनी इस बहन को बहुत स्नेह करते थे। कहते हैं, कृष्ण के हृदय में सुभद्रा के लिए पिता समान वात्सल्य और माँ जैसा अपनापन था।

समय बीतता गया। पांडवों और यदुवंशी राजाओं का मेल-जोल बढ़ा। जब पांडव अपने वनवास और दुर्योधन की कुटिलताओं से जूझते रहे, तब कृष्ण ही उनके सच्चे मार्गदर्शक बने। इसी दौरान, एक नया प्रसंग जन्म ले रहा था, जो आने वाले समय में इतिहास की दिशा बदल देगा।

अर्जुन, पाँचों पांडवों में सबसे श्रेष्ठ धनुर्धर और युद्धकुशल, तपस्या और तीर्थयात्रा पर निकले थे। वे द्वारका पहुँचे। वहाँ उन्होंने पहली बार सुभद्रा को देखा। कहा जाता है कि उस क्षण अर्जुन का मन सुभद्रा की ओर खिंच गया। सुभद्रा का सौंदर्य साधारण नहीं था, वह लज्जा और आत्मविश्वास से भरी एक ऐसी युवती थीं, जिसकी उपस्थिति स्वयं में प्रकाश की तरह लगती थी।

कृष्ण ने अर्जुन की भावनाओं को तुरंत भाँप लिया। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा-"पार्थ, तुम्हारा और सुभद्रा का मिलन केवल तुम्हारे हृदय की इच्छा नहीं, बल्कि आने वाले युग की आवश्यकता है।"

लेकिन यहाँ एक समस्या थी। बलराम, जो सुभद्रा के बड़े भाई थे, वे उसे कुरुक्षेत्र के कौरव राजकुमार दुर्योधन को ब्याह देना चाहते थे। बलराम का मानना था कि इससे यदुवंश और कुरुवंश का मेल होगा और शत्रुता कम होगी। कृष्ण जानते थे कि यह विवाह पांडवों के विरुद्ध जाएगा। इसलिए उन्होंने एक योजना बनाई।

कृष्ण ने अर्जुन से कहा-"यदि सुभद्रा तुम्हें चाहती है, तो उसे स्वयं निर्णय लेने दो। तुम रथ लेकर उसे अपहरण की तरह ले जाओ, लेकिन यह 'अपहरण' केवल प्रतीक होगा। वास्तव में यह उसका और तुम्हारा मिलन होगा।"

एक दिन द्वारका में रथ सजाया गया। सुभद्रा रथ पर बैठीं और अर्जुन स्वयं सारथी बने।जब बलराम को पता चला, तो वे क्रोधित हुए। लेकिन कृष्ण ने उन्हें समझाया-"भैया, देखिए तो सही, रथ की लगाम कौन थामे हुए है? हमारी बहन स्वयं अर्जुन को स्वीकार कर चुकी है। यह कोई बलात् विवाह नहीं, यह उसका चुनाव है।"

यहाँ महाभारत हमें एक गहरी शिक्षा देता है-"स्त्री केवल किसी कुल का माध्यम नहीं होती, उसका अपना निर्णय भी विवाह का आधार होना चाहिए।"

इस प्रकार सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हुआ। पांडवों के घर सुभद्रा का आगमन हुआ तो सभी ने उसे आदर दिया। द्रौपदी, जो पहले से पांडवों की पत्नी थीं, प्रारंभ में कुछ असमंजस में रहीं। परन्तु सुभद्रा की सहजता और विनम्रता ने सबका मन जीत लिया।

सुभद्रा द्रौपदी से मिलने जब पहली बार गईं तो उन्होंने राजसी वस्त्र न पहनकर, साधारण वेशभूषा धारण की। द्रौपदी के चरण छुए और अत्यंत विनम्र होकर बोलीं-"मैं आपकी दासी के समान रहूँगी।"द्रौपदी का हृदय पिघल गया।

समय बीतता गया। सुभद्रा और अर्जुन के जीवन में एक और महत्वपूर्ण प्रसंग आया-उनके पुत्र अभिमन्यु का जन्म। अभिमन्यु केवल अर्जुन का पुत्र नहीं था, वह पांडवों की आशा और भावी पीढ़ी की शक्ति था। सुभद्रा ने उसे अत्यंत प्रेम से पाला। कहते हैं, जब अभिमन्यु गर्भ में था, तब अर्जुन ने उसे चक्रव्यूह भेदने की शिक्षा दी थी। यद्यपि अंत तक सुभद्रा के शिक्षा पूर्ण होने से पूर्व सो जाने के कारण,गर्भ में अभिमन्यु की शिक्षा अधूरी रह गई, लेकिन वही अधूरी शिक्षा आगे चलकर महाभारत के युद्ध में निर्णायक प्रसंग बनी।

सुभद्रा के जीवन का सबसे मार्मिक क्षण तब आया जब कुरुक्षेत्र का युद्ध अपने चरम पर था। उन्होंने अपने बेटे अभिमन्यु को युद्धभूमि में जाते देखा। अभिमन्यु केवल सोलह वर्ष का था, लेकिन उसकी वीरता अपराजेय थी। सुभद्रा के आँचल से आशीर्वाद बंधा, लेकिन हृदय में एक अनकहा डर भी था।

कौरवों ने मिलकर जब अभिमन्यु को चक्रव्यूह में घेर लिया और अंततः उसे वीरगति प्राप्त हुई, तो सुभद्रा का संसार बिखर गया। महल का हर कोना शोक में डूबा था। वह माँ, जिसने अपने पुत्र को धर्म और वीरता का संस्कार दिया था, अब उसे खो चुकी थी।

अभिमन्यु की वीरगति के बाद सुभद्रा का जीवन एक ऐसी माँ का जीवन था, जिसके हृदय पर शोक का ऐसा घाव लगा जिसे समय भी भर न सका। चक्रव्यूह में अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार जब सुभद्रा तक पहुँचा तो उसका हृदय जैसे थम गया। कृष्ण की बहन होने के बावजूद नियति ने उसे सबसे बड़ा दुख दिया-एक माँ के कलेजे का टुकड़ा छिन गया।

सुभद्रा ने अपनी आँखों से अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा को विधवा होते देखा और अपने आने वाले पौत्र को ही आशा का दीप समझा। उसका पूरा जीवन उत्तरा और अजन्मे बच्चे-परिक्षित-की रक्षा और परवरिश में लग गया। वह जानती थी कि कुरुक्षेत्र का विनाश पांडवों और यादवों के वंश को लगभग समाप्त कर देगा, इसलिए परिक्षित ही आगे की पीढ़ी का आधार है।

महाभारत युद्ध समाप्त होने के बाद सुभद्रा ने हस्तिनापुर में पांडवों के साथ रहते हुए अपना शेष जीवन बिताया। उसने द्रौपदी और कुन्ती के साथ मिलकर परिक्षित को संस्कार और शिक्षा देने का दायित्व निभाया। कृष्ण के द्वारका प्रस्थान और यादववंश के नाश के बाद उसका सहारा और भी कम हो गया।

अंततः सुभद्रा ने जीवन के अंतिम क्षण शांत साध्वी की तरह बिताए। उसका मन केवल कृष्ण-स्मरण और अपने पुत्र की यादों में डूबा रहा। मृत्यु भी उसके लिए मानो मुक्ति बनकर आई-उस दर्द से मुक्ति जो अभिमन्यु की शहादत ने उसे दिया था।

सीख :- "सुभद्रा का जीवन यह सिखाता है कि माँ का हृदय सबसे गहरा रणक्षेत्र होता है, जहाँ आंसुओं से भी अधिक मौन चीखें गूंजती हैं।"

उत्तरा

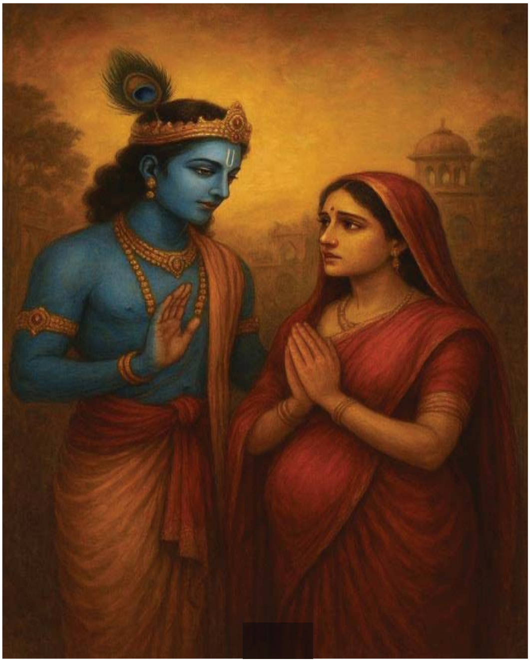

उत्तरा राजा विराट की पुत्री थीं और पांडवों के विराटनगर में अज्ञातवास के दौरान उनसे जुड़ी कहानी महाभारत का महत्वपूर्ण अध्याय बनती है।

उत्तरा की कथा महाभारत के उन प्रसंगों में से है, जहाँ स्त्री का साहस, करुणा और पीड़ा एक साथ दिखाई देती है।

जब पांडव अज्ञातवास में राजा विराट के महल में छिपकर रह रहे थे, तो अर्जुन ने वहाँ ब्रिहन्नला नाम से नृत्य-गुरु का रूप धारण किया। जब पांडव अज्ञातवास में विराटनगर पहुँचे, तब उत्तरा ने सबसे पहले अर्जुन

को अपने गुरु रूप में जाना। अर्जुन, ब्रह्मचारी वेश थे और उत्तरा को नृत्य-संगीत की शिक्षा देते थे। यह रिश्ता पिता-पुत्री जैसा पवित्र और कोमल था।यहाँ उत्तरा के जीवन में पहला मोड़ आया-उसके भीतर कला और संस्कृति की गहरी समझ विकसित हुई।

महाभारत युद्ध से पहले जब पांडवों ने विराट से संबंध मजबूत करने की सोची, तो उत्तरा का विवाह अर्जुन से कराने का प्रस्ताव आया। लेकिन अर्जुन ने कहा-"वह तो मेरी शिष्या है, मैं उसे पुत्री समान मानता हूँ।" अर्जुन ने उत्तरा का विवाह अपने पुत्र अभिमन्यु से करने का निश्चय किया। यही विवाह उत्तरा के जीवन को महाभारत की कथा में अमर कर गया।

अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह अत्यंत भव्य था। दोनों के जीवन में प्रेम और उज्ज्वल भविष्य की कल्पना थी। किंतु युद्ध ने उनकी खुशियों को निगल लिया। कुरुक्षेत्र युद्ध में अभिमन्यु की वीरगति ने उत्तरा को पलभर में विधवा बना दिया। उस समय वह गर्भवती थीं।

अभिमन्यु की वीरगति महाभारत युद्ध के तेरहवें दिन चक्रव्यूह में हुई। उत्तरा के जीवन की सबसे भीषण त्रासदी यहीं से शुरू होती है। विवाह के कुछ ही समय बाद वह विधवा हो गई।

युद्ध के बाद उसकी गोद में अभिमन्यु का वंश जीवित था। गर्भ में पल रहे पुत्र की रक्षा के लिए ही महाकाव्य का सबसे भयानक प्रसंग घटित हुआ। अश्वत्थामा ने रात में पांडव-पुत्रों की हत्या के बाद ब्रह्मास्त्र का संधान करके उत्तरा के गर्भस्थ शिशु को निशाना बनाया। पूरा कुरुक्षेत्र कांप उठा। उत्तरा ने रोते हुए पुकारा-"हे माधव, यदि न्याय बचा है, तो मेरे अजन्मे बालक को बचाइए।" कृष्ण ने उस पुकार को सुना और अपने दिव्य चक्र से गर्भ की रक्षा की। इस प्रकार उत्तरा ने अकेले ही अगली पीढ़ी की धरोहर को जन्म दिया-महाराज परीक्षित।

इसके बाद उत्तरा का जीवन युद्ध की राख में जलते हुए दीपक जैसा था। उसने न कोई वैभव चाहा, न सुख-संपत्ति। उसका सारा अस्तित्व परीक्षित को पालने में समर्पित रहा। वह जानती थी कि यही बालक भविष्य में पांडव वंश को जीवित रखेगा।

सीख:-उत्तरा के जीवन की एक बड़ी सीख यही है कि एक स्त्री अपने साहस से पूरे वंश को बचा सकती है। "पुरुष युद्ध जीतते हैं, पर स्त्रियाँ पीढ़ियाँ बचाती हैं।" यही उत्तरा की कथा को कालजयी बनाती है।

परछाइयाँ
(महाभारत के गुमनाम बालक वीर योद्धाओं की अमर गाथा)

महाभारत के युद्ध में बालक वीरों की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक रही।बालवीर इरावन, अनिरुद्ध, सुतसोम जैसे युवा योद्धा थे, जिन्होंने युद्धभूमि में अपार साहस का प्रदर्शन किया।इरावन ने कौरवों के विरुद्ध लड़ते हुए अपने प्राणों की आहुति दी, जिससे पांडवों की विजय में मदद मिली।अनिरुद्ध, कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र, ने युद्ध में वीरता से भाग लिया और कई शत्रुओं का संहार किया।सुतसोम भी अत्यंत बलशाली बालवीर था, जिसने अपने छोटे आयु में ही रणभूमि में अद्भुत पराक्रम दिखाया।

बालकवीरों ने युद्ध में आचार-संहिता का पालन करते हुए धर्म और न्याय की रक्षा के लिए संघर्ष किया।आज भी बालवीरों की ये अमर गाथाएँ युवाओं के लिए प्रेरणा स्रोत बनी हुई हैं।

लेखक:-नवीन कुमार नवीन

इरावन

कुरुक्षेत्र की धरती पर युद्ध का नगाड़ा बज चुका था। पांडव और कौरव आमने-सामने खड़े थे। हर योद्धा अपनी क्षमता के अनुसार योगदान देने को तत्पर था। इन्हीं योद्धाओं की भीड़ में एक ऐसा नाम था, जिसे अक्सर महाभारत की मुख्य कथा में लोग भूल जाते हैं, लेकिन जिसकी वीरता और त्याग ने पूरे युद्ध की दिशा बदल दी। वह नाम था-इरावन।

इरावन कोई साधारण योद्धा नहीं थे। वे अर्जुन और नागकन्या उलूपी के पुत्र थे। जन्म से ही उनमें दिव्यता झलकती थी। नागवंश का बल और अर्जुन का पराक्रम उनके भीतर संयुक्त रूप से प्रवाहित हो रहा था।

बचपन से ही उन्होंने युद्धकला और धर्म की शिक्षा पाई। उलूपी ने अपने पुत्र को सर्पों की तरह लचकदार, फुर्तीला और अजेय बनाया। वहीं अर्जुन की छवि ने उन्हें साहसी, तेजस्वी और धनुर्विद्या में पारंगत किया।

समय बीता, इरावन बड़े हुए। वे नागलोक में ही रहते थे, लेकिन जब कुरुक्षेत्र का युद्ध आरंभ हुआ, तो अर्जुन ने अपने पुत्र को संदेश भेजा-"हे पुत्र, आज धर्म और अधर्म की निर्णायक घड़ी आ चुकी है। तेरा रक्त भी पांडवों की रगों में है। आकर इस धर्मयुद्ध में अपना योगदान दे।"

पिता का आह्वान सुनकर इरावन ने बिना देर किए युद्धभूमि की ओर प्रस्थान किया।

कुरुक्षेत्र की धरती पर पांडवों की सेना विशाल थी, लेकिन भविष्यवाणी कहती थी कि पहले दिन ही यदि कोई श्रेष्ठ योद्धा अपने प्राण न्यौछावर नहीं करेगा, तो विजय पांडवों के हाथ नहीं लग सकेगी। यह सुनकर सभी मौन हो गए। कोई भी ऐसा योद्धा सामने नहीं आ रहा था जो स्वेच्छा से मृत्यु को गले लगा सके।

तभी इरावन खड़े हुए। उनकी आँखों में तेज और चेहरे पर अद्‌भुत शांति थी। उन्होंने कहा-"यदि यह बलिदान ही धर्म की विजय का मार्ग प्रशस्त करता है, तो मैं अपने प्राण देने को तत्पर हूँ। मृत्यु से भयभीत होना क्षत्रिय का धर्म नहीं है। यदि मेरी आहुति से धर्म की रक्षा होगी, तो यह सौदा मुझे स्वीकार है।"

उनके इस वचन ने पूरे शिविर को हिला दिया। अर्जुन ने पुत्र की ओर देखा-"हे पुत्र, तू अभी बहुत युवा है। तेरा जीवन आगे भी महत्त्वपूर्ण हो सकता है।"

इरावन ने मुस्कुराकर उत्तर दिया-"पिताश्री, जीवन की लंबाई से अधिक उसका उद्देश्य बड़ा होना चाहिए। और यदि वह उद्देश्य धर्म की रक्षा है, तो मृत्यु भी महान उपलब्धि बन जाती है।"

बलिदान से पूर्व एक अनोखी शर्त रखी गई-इच्छा थी कि इरावन विवाह करके ही मृत्यु का वरण करें। परंतु कौन कन्या ऐसे युवक से विवाह करती जो अगले ही दिन बलि का शिकार हो जाएगा?

सभी दिशाओं में संदेश भेजा गया, लेकिन कोई कन्या तैयार नहीं हुई। तभी स्वयं श्रीकृष्ण ने एक अद्‌भुत लीला रची। वे मोहिनी रूप में प्रकट हुए और इरावन से विवाह कर लिया। विवाह की रस्म पूरी हुई, और इस प्रकार इरावन का अंतिम संस्कार धर्मसम्मत बन सका।

"जब कोई महान कार्य अधूरा रह जाए, तो भगवान स्वयं उसे पूरा करने आते हैं।"

युद्धभूमि सजी। पांडव और कौरव अपने-अपने शिविरों में थे। इरावन ने देवताओं को साक्षी मानकर, अग्नि के सामने अपने प्राणों की आहुति देने का निश्चय किया। वे रणभूमि में उतरे, और पहले ही दिन कई कौरव योद्धाओं का संहार किया। उनकी गति वज्र जैसी थी। इरावन ने अकेले ही कई रथों को धराशायी किया, अनगिनत सैनिकों को मृत्यु का स्वाद चखाया।

कौरव पक्ष समझ गया कि यह युवक कोई साधारण योद्धा नहीं है। तभी अलम्बुष नामक राक्षस को आगे बढ़ाया गया। अलम्बुष ने मायावी युद्ध छेड़ा। कभी वह अदृश्य हो जाता, कभी आकाश में उड़ने लगता, कभी हजारों की सेना का रूप धर लेता।

इरावन भी पीछे हटने वाले नहीं थे। उन्होंने नागास्त्र का प्रयोग किया। क्षण भर में हजारों विषधर नाग प्रकट हुए और अलम्बुष की माया को नष्ट कर दिया। परंतु अंततः भविष्यवाणी पूर्ण हुई,इरावन राक्षस के प्रहार से गंभीर रूप से घायल हुए और वीरगति को प्राप्त हुए।

जब अर्जुन ने यह समाचार सुना, तो उनके हृदय पर गहरा आघात पहुँचा। अपने पुत्र को देखकर उनकी आँखें भर आईं। उन्होंने आकाश की ओर देखकर कहा-"हे प्रभु, यह कैसा न्याय है? धर्म की रक्षा के लिए पुत्र को खोना पड़ा।"

तभी श्रीकृष्ण ने सांत्वना दी-“पार्थ, जो धर्म के लिए प्राण त्यागता है, वह मृत्यु नहीं पाता। वह अमर हो जाता है। इरावन का नाम युगों तक लिया जाएगा। यह बलिदान ही पांडवों की विजय का मूल कारण बनेगा।”

सीख:इरावन की कथा हमें यह सिखाती है कि-“धर्म की रक्षा के लिए यदि प्राण भी देने पड़ें, तो पीछे नहीं हटना चाहिए। त्याग ही जीवन का सबसे बड़ा सौंदर्य है।”“सच्ची वीरता केवल रणभूमि में शत्रु को मारने में नहीं है, बल्कि धर्म की रक्षा में अपने प्राण न्यौछावर करने में है।”

भले ही उनका नाम महाभारत में उतना प्रसिद्ध न हो, लेकिन उनके बलिदान ने पांडवों की विजय का मार्ग प्रशस्त किया और धर्म के सूरज को डूबने नहीं दिया।

अनिरुद्ध

द्वारका नगरी में जब धर्म और समृद्धि की ध्वजा लहराती थी, तब वहाँ एक युवा राजकुमार अपनी तेजस्विता और सौम्यता से सबका ध्यान खींचता था। वह था-अनिरुद्ध, भगवान श्रीकृष्ण का पौत्र, रुक्मिणी और कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का बेटा।

जन्म से ही अनिरुद्ध में अपूर्व आकर्षण था। उसके मुख पर दादा कृष्ण जैसी आभा और पिता प्रद्युम्न जैसी वीरता का संगम दिखाई देता था। द्वारका की गलियों में जब वह रथ हाँकता या मित्रों संग क्रीड़ा करता,

तो लोग कहते-“यह तो यदुवंश का भविष्य है, जो आने वाले समय में सबको अपने साहस और प्रेम से बाँधेगा।”

अनिरुद्ध को बचपन से ही शास्त्र, शस्त्र और धर्म की शिक्षा मिली। कृपाचार्य और अन्य गुरुओं ने उन्हें युद्धकला में दक्ष बनाया। धनुर्विद्या, गदा और तलवार-हर शस्त्र पर उनकी पकड़ थी।कृष्ण स्वयं उन्हें नीतिशास्त्र और कूटनीति का ज्ञान देते। एक दिन उन्होंने अनिरुद्ध से कहा-“हे वत्स, याद रखो, केवल बलवान होना ही पर्याप्त नहीं है। योद्धा वही कहलाता है जो अपने बल को धर्म की रक्षा के लिए उपयोग करे।”

यह बात अनिरुद्ध के मन में जीवन भर अंकित रही।

अनिरुद्ध का जीवन एक मोड़ पर तब बदल गया जब वह बाणासुर की पुत्री उषा से मिला। यह मिलन संयोग से नहीं, बल्कि नियति से था।उषा एक बार स्वप्न में एक सुन्दर युवक को देखती है और प्रेम में पड़ जाती है। जब वह अपनी सखी चित्रलेखा से इस रहस्य को कहती है, तो चित्रलेखा अपनी योगविद्या से उस युवक का चित्र बनाती है। वह युवक और कोई नहीं, अनिरुद्ध ही निकलते हैं।

चित्रलेखा अपनी सिद्धियों से अनिरुद्ध को द्वारका से उषा के महल में पहुँचा देती है। वहाँ दोनों का मिलन होता है और दोनों गहरे प्रेम में बंध जाते हैं-“प्रेम किसी सीमा, किला या दूरी से बंधा नहीं होता, वह आत्मा से आत्मा का मिलन है।”

जब बाणासुर को यह समाचार मिला कि उसकी पुत्री ने शत्रु के पौत्र को अपने महल में छिपा रखा है, तो उसका क्रोध सातवें आसमान पर पहुँच गया। उसने अपनी सेना को आदेश दिया कि अनिरुद्ध को कैद कर लिया जाए।

परंतु अनिरुद्ध कोई साधारण युवक नहीं था। उसने अकेले ही बाणासुर की सेना से टक्कर ली। चारों ओर से तलवारें और गदाएँ बरस रही थीं, परंतु अनिरुद्ध सिंह की तरह गरजते हुए सबका सामना कर रहे

थे।घंटों तक युद्ध चलता रहा। अंततः छल से अनिरुद्ध को बाँध लिया गया और कैदखाने में डाल दिया गया।

जब यह समाचार द्वारका पहुँचा, तो वहाँ कोहराम मच गया। प्रद्युम्न और कृष्ण चिंतित हो उठे। रुक्मिणी रो पड़ीं। सबने मिलकर निर्णय लिया कि अब युद्ध के बिना कोई मार्ग नहीं है।

श्रीकृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न विशाल सेना लेकर बाणासुर की नगरी की ओर कूच कर गए।युद्ध भयानक था। बाणासुर शिवभक्त था और उसे भगवान शिव का वरदान प्राप्त था कि वह अजेय रहेगा। उसकी सहस्र भुजाएँ थीं। जब वह रणभूमि में उतरा, तो उसकी शक्ति अपार थी।

कृष्ण और बाणासुर में भयंकर द्वंद्व हुआ। हर वार से पृथ्वी काँप उठती। बलराम और प्रद्युम्न भी अपनी ओर से सेनाओं का संहार कर रहे थे।बाणासुर की सहस्र भुजाओं ने युद्ध को कठिन बना दिया। परंतु कृष्ण ने अपनी सुदर्शन चक्र से धीरे-धीरे उसकी भुजाएँ काटनी शुरू कीं। जब केवल चार भुजाएँ बचीं, तभी भगवान शिव स्वयं प्रकट हुए और युद्ध रोक दिया।

शिव ने कहा-"केशव, यह मेरा भक्त है। इसे मारना उचित नहीं।"कृष्ण मुस्कुराए और बोले-"मैं इसे मारूँगा नहीं। परंतु इसकी शक्ति का घमंड तोड़ना आवश्यक था।"

अनिरुद्ध और उषा का विवाह संपन्न हुआ। यह विवाह केवल दो आत्माओं का नहीं, बल्कि दो शत्रु वंशों का भी मिलन था।

अनिरुद्ध ने केवल प्रेमी और दामाद के रूप में ही नहीं, बल्कि योद्धा के रूप में भी अपनी छाप छोड़ी। यदुवंश के आंतरिक संघर्षों में भी उन्होंने अपनी वीरता दिखाई।लेकिन अंततः यादव वंश के विनाश के समय, मूसल युद्ध में वे भी शहीद हुए। समुद्र तट पर यादवों का नाश हुआ, और अनिरुद्ध भी उसी भाग्य के शिकार बने।

सीख:अनिरुद्ध की कथा हमें यह सिखाती है-"प्रेम और साहस जीवन की दो सबसे बड़ी शक्तियाँ हैं।""अहंकार भले सहस्र भुजाओं का हो, पर

अंततः विनम्रता और प्रेम ही स्थायी होते हैं।" "सच्चा योद्धा वही है जो केवल युद्ध ही नहीं, रिश्तों को भी निभाना जानता हो।"

सुतसोम

सुतसोम का जन्म एक रहस्यमयी समय पर हुआ था। उसके माता-पिता दोनों विद्वान और धर्मात्मा थे। वे अत्यंत संयमी और सत्यनिष्ठा में विश्वास रखने वाले लोग थे। जब सुतसोम का जन्म हुआ, तो गाँव वाले उसे विशेष दिव्यता का प्रतीक मानने लगे। कहा जाता है कि उसकी आँखों में एक अलग ही चमक थी, मानो भविष्य की अनकही कथाएँ उसी में समाहित थीं। सुतसोम बचपन से ही ज्ञान, पराक्रम और धर्म की गहराईयों में रमण करने वाला बालक था। सुतसोम महाभारत कालीन एक बालवीर और गुमनाम योद्धा थे।

यह अंशिक रूप से अनुमानित है, क्योंकि सुतसोम के माता-पिता के नाम और वंश के संबंध में स्पष्ट विवरण महाभारत शास्त्र में नहीं मिलता,लेकिन परंपरागत मान्यताओं और साहित्यिक कल्पना के अनुसार यह मान्यता है:माता-उर्मिला (कुछ कथाओं में उल्लेखित नहीं),पिता-असुर कुल से संबंधित योद्धा, परंतु स्पष्ट नाम उपलब्ध नहीं।

उसकी शिक्षा दीक्षा का आरंभ अपने गुरु से हुआ, जिसने उसे धर्म, नीति, राजनीति और युद्ध कौशल की शिक्षा दी। गुरु के शब्द उसके जीवन

में ऐसे समाहित हो गए मानो वे उसके रक्त में प्रवाहित हो चुके हों। समय के साथ सुतसोम ने अत्यंत कुशल धनुर्धर बनने की कला भी अर्जित कर ली। उसकी लक्ष्य साधना और धैर्य के किस्से दूर-दूर तक फैल गए थे- "विजय की राह कठिन होती है, पर सत्य का साथ अमर होता है।" यह पंक्ति उसके जीवन का मूल मंत्र बन गई थी।

सुतसोम का संपर्क अनिरुद्ध और इरावन से भी हुआ। ये दोनों वीर पुरुष भी महाभारत के महायुद्ध में विशेष भूमिका निभाने वाले थे। अनिरुद्ध का व्यक्तित्व चंचल, परंतु गम्भीर था। इरावन धैर्यशील, पराक्रमी और नीतिमान। तीनों का मिलन हुआ युद्ध की तैयारी के समय। एक-दूसरे में गहरा आदर और भाईचारे की भावना थी। वे हर परिस्थिति में एक-दूसरे का साथ देने का वचन लेते-"जहाँ एकता होती है, वहाँ अविजेयता का निवास होता है।" इस पंक्ति को वे बार-बार एक-दूसरे को याद दिलाते।

महाभारत के युद्ध में सुतसोम का प्रवेश एक नई ऊर्जा के रूप में हुआ। उसकी तलवार की धार इतनी तेज थी कि युद्ध के मैदान में उसके कदम गूँजते थे। एक-एक वार में दुश्मनों के मनोबल को तोड़ता, अपने साथियों के हौसले को बुलंद करता। उसके साथ अनिरुद्ध और इरावन भी थे, और वे मिलकर पांडवों के लिए संघर्ष करते।

युद्ध के दौरान कई बार वह अकेले भीषण दुश्मनों के साथ भिड़ा। उसकी वीरता की मिसालें गाथाओं में गाई जाती रहीं। परंतु उसका सबसे बड़ा संघर्ष तब हुआ जब कौरवों ने उसे घेर लिया। भीषण प्रतिकार के बावजूद सुतसोम ने कभी हार नहीं मानी। उसकी तलवार की गूंज मानो युद्ध के मैदान को झंकृत कर रही थी।

एक दिन दुश्मन ने एक साथ कई वार किए पर सुतसोम ने चुपके से वार करते हुए उन पर प्रहार किया। "मेरे कदमों की गूंज से कांपता है अंधकार।" उसकी यह पंक्ति युद्धभूमि का हर वीर अपने ह्रदय में संजोता।

समय के साथ अनिरुद्ध और इरावन की वीरता के किस्से भी उज्ज्वल होते गए। उन्होंने सुतसोम के साथ मिलकर अनेक दुश्मनों को परास्त किया। परंतु युद्ध में सुतसोम की सबसे बड़ी परीक्षा तब आई, जब उसके

मित्रों ने उसे अकेला छोड़ दिया-"सच्चा साथी वही है, जो विपत्ति में भी साथ निभाए।" यह उसकी आत्मा का पुकार बन गई।

प्रद्युम्न (कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र) और इरावन (कृष्ण और मद्रि के पुत्र) के साथ सुतसोम का अलगाव एक दुखद और रहस्यमय प्रसंग है।सुतसोम भी बालवीर था, परंतु उनका स्वरूप, चरित्र और उद्देश्य अलग था।जबकि प्रद्युम्न और इरावन का संबंध कृष्ण परिवार से था।यह अलगाव संघर्ष, राजनीतिक समीकरण, और नियति का खेल था, जिससे ये वीर एक-दूसरे से भिन्न पथ पर चले गए।

सुतसोम संभवतः असुर कुल या अन्य वंश से संबंधित था, जो अपने कारणों से पांडव पक्ष में नहीं था।युद्ध की स्थिति और व्यक्तिगत कारणों के चलते सुतसोम ने कौरवों के पक्ष में भाग लिया।

सुतसोम ने अकेले ही युद्ध जारी रखा। उसके पराक्रम की गाथाएं पांडवों में भी गर्व का विषय बन गईं। महाभारत के युद्ध में सुतसोम का मुकाबला अर्जुन, भीम, और द्रौपदी के पुत्र अर्जुनपुत्र अभिमन्यु से हुआ।विशेष रूप से अभिमन्यु के साहसिक प्रहार से सुतसोम का वध हुआ।

अभिमन्यु ने अपने चातुर्य, शक्ति और युद्धकौशल का उपयोग कर सुतसोम को हराया।इस युद्ध में सुतसोम का वीरगति प्राप्त होना पांडव पक्ष के लिए महत्वपूर्ण मोड़ बना।यह प्रसंग धर्म के पक्ष की विजय का प्रतीक बन गया।

सीख:सुतसोम की कथा यह सिखाती है कि वीरता और बलिदान केवल नामचीन योद्धाओं तक सीमित नहीं रहते। अनजाने, गुमनाम योद्धा भी धर्म की रक्षा में अपना योगदान देते हैं। उनका संघर्ष और बलिदान हम सबके लिए प्रेरणा स्रोत हैं।

दुर्योधन और कर्ण की मित्रता

दुर्योधन और कर्ण की मित्रता महाभारत की सबसे अनोखी, सबसे मार्मिक और सबसे चर्चित कहानियों में गिनी जाती है। यह सिर्फ दो योद्धाओं का संबंध नहीं था, बल्कि उस विश्वास और अपनत्व का उदाहरण था जो समय, परिस्थिति और आलोचना से भी बड़ा साबित हुआ।

कर्ण का जन्म राजवंश में होकर भी परिस्थितियों ने उसे सारथी का पुत्र बना दिया। राजमहलों से दूर, अपमान और संदेह की छाया में पला-बढ़ा कर्ण, जब पहली बार हस्तिनापुर की रंगभूमि में अपने कौशल का प्रदर्शन करता है, तभी उसकी राहें दुर्योधन से जुड़ जाती हैं।

उस दिन अर्जुन और कर्ण की धनुर्विद्या की स्पर्धा थी। जब कर्ण ने अर्जुन से टक्कर ली, तो सभा में बैठे लोग उसका उपहास उड़ाने लगे- "यह सारथी पुत्र राजकुमार अर्जुन को कैसे ललकार सकता है?" तब हर

कोई चुप था, पर दुर्योधन ने उठकर कहा-"प्रतिभा जन्म से बड़ी होती है। और मैं इस वीर को अपना मित्र मानता हूँ।"यही वाक्य कर्ण के जीवन की सबसे बड़ी पूँजी बन गया। दुर्योधन ने न सिर्फ कर्ण को अपनाया, बल्कि उसे अंग देश का राजा बनाकर वह सम्मान भी दिया जो समाज ने उससे छीन रखा था।

दुर्योधन के लिए कर्ण उसका सबसे विश्वासपात्र साथी था। और कर्ण के लिए दुर्योधन उसका वह सहारा था जिसने उसे समाज की हंसी-ठिठोली से ऊपर उठाकर अपने बराबर खड़ा कर दिया। कर्ण बार-बार कहता-"मैंने इस दुनिया में सबका तिरस्कार सहा है, पर दुर्योधन ने मुझे सम्मान दिया। उसके लिए प्राण भी अर्पित करना मेरा धर्म है।"

महाभारत युद्ध में जब-जब दुर्योधन पर संकट आया, कर्ण ढाल बनकर खड़ा रहा। चाहे भीम का पराक्रम हो या अर्जुन का बाण, कर्ण ने हर जगह दुर्योधन की प्रतिष्ठा बचाई। यही कारण था कि दुर्योधन कहता था-"कर्ण, तू मेरा मित्र नहीं, मेरा भाई है। जो मेरे पास नहीं है, वह तेरा है; और जो तेरा है, वह मेरा।"

यह मित्रता सिर्फ युद्ध तक सीमित नहीं रही, बल्कि जीवन-मृत्यु के निर्णयों तक पहुँची। कृष्ण ने जब कर्ण को पांडव पक्ष में आने का निमंत्रण दिया, तो कर्ण ने विनम्रता से कहा-"कृष्ण, तुम सही कहते हो, मैं कुन्तीपुत्र हूँ। परंतु दुर्योधन ने मुझे वह दिया है जो मेरी माँ भी न दे सकी। मैं अपने मित्र को छोड़कर उसके शत्रुओं का साथ कैसे दूँ?"वह क्षण मित्रता की अमर गाथा बन गया।

युद्धभूमि में कर्ण का प्रत्येक बाण, दुर्योधन के प्रति उसकी निष्ठा का प्रतीक था। और जब कर्ण वीरगति को प्राप्त हुआ, दुर्योधन की आँखों से बहते आँसू उस मित्रता की अंतिम मोहर थे।

महाभारत ने कई रिश्ते दिखाए-भाई-भाई का द्वंद्व, गुरु-शिष्य का संघर्ष, पिता-पुत्र का टकराव-लेकिन मित्रता का सबसे उज्ज्वल उदाहरण दुर्योधन और कर्ण ही रहे।

यक्ष -युधिष्ठिर संवाद

महाभारत के अनुसार, पांडवों को दुर्योधन और कौरवों से छलपूर्वक हारकर 13 वर्षों का वनवास और 1 वर्ष का अज्ञातवास भोगना पड़ा। इस वनवास के दौरान, एक दिन पांडवों को अत्यधिक प्यास लगी। उन्होंने पानी की तलाश शुरू की और सहदेव को जल लाने के लिए भेजा। सहदेव जब जलाशय के पास पहुँचे, तो वहाँ एक यक्ष ने उन्हें रोकते हुए कहा कि यदि वह उसके प्रश्नों का उत्तर देंगे, तभी वह जल पी सकते हैं। सहदेव ने यक्ष की बातों की अवहेलना की और जल पीने लगे, जिसके परिणामस्वरूप वह मूर्छित होकर गिर पड़े।

सहदेव के लौटकर न आने पर, नकुल, अर्जुन और भीम को भेजा गया। सभी ने यक्ष की शर्तों की अवहेलना की और जल पीने का प्रयास किया, जिसके कारण वे भी मूर्छित हो गए। अंत में, युधिष्ठिर स्वयं जलाशय पर पहुँचे और वहाँ अपने सभी भाइयों को मूर्छित पाया। युधिष्ठिर ने यक्ष से पूछा कि उनके भाइयों को क्या हुआ। यक्ष ने उत्तर दिया कि उन्होंने उसकी शर्तों की अवहेलना की थी, जिसके कारण वे मूर्छित हो गए।

यक्ष ने युधिष्ठिर से कई गूढ़ और नैतिक प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर युधिष्ठिर ने विवेकपूर्ण और सत्यनिष्ठा के साथ दिया। प्रमुख प्रश्न और उत्तर इस प्रकार हैं:

यक्षः "जीवन का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?"

युधिष्ठिरः "हर दिन लोग मरते हैं, फिर भी जीवित लोग सोचते हैं कि वे अमर हैं। इससे बड़ा आश्चर्य और क्या हो सकता है?"

यक्षः "सारे दुःखों का नाश कौन कर सकता है?"

युधिष्ठिरः "जो सब छोड़ने को तैयार हो।"

यक्षः "मृत्युपर्यंत यातना कौन देता है?"

युधिष्ठिरः "गुप्त रूप से किया गया अपराध।"

यक्षः "सबसे बड़ा धर्म क्या है?"

युधिष्ठिरः "अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है।"

यक्षः "मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र कौन है?"

युधिष्ठिरः "धर्म ही मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र है।"

यक्षः "सबसे बड़ा धन क्या है?"

युधिष्ठिरः "संतोष सबसे बड़ा धन है।"

यक्षः "सबसे बड़ा सुख क्या है?"

युधिष्ठिरः "अच्छा स्वास्थ्य ही सबसे बड़ा सुख है।"

यक्षः "भाग्य क्या है?"

युधिष्ठिरः "हर क्रिया, हर कार्य का एक परिणाम है। परिणाम अच्छा भी हो सकता है, बुरा भी हो सकता है। यह परिणाम ही भाग्य है। आज का प्रयत्न कल का भाग्य है।"

यक्षः "वायु से तेज कौन है?"

युधिष्ठिर: "मन की गति वायु से भी तेज है।"

यक्ष: "पृथ्वी से भारी क्या है?"

युधिष्ठिर: "माँ पृथ्वी से भी भारी है।"

यक्ष: "आकाश से ऊँचा क्या है?"

युधिष्ठिर: "पिता का कद आकाश से भी ऊँचा होता है।"

यक्ष: "तिनकों से अधिक संख्या किसकी है?"

युधिष्ठिर: "व्यक्ति की चिंताओं की संख्या तिनकों से अधिक है।"

यक्ष: "जीवन का उद्देश्य क्या है?"

युधिष्ठिर: "जीवन का उद्देश्य उसी चेतना को जानना है, जो जन्म और मरण के बंधन से मुक्त है। उसे जानना ही मोक्ष है।"

यक्ष: "जन्म का कारण क्या है?"

युधिष्ठिर: "अतृप्त वासनाएँ, कामनाएँ और कर्मफल, जन्म का कारण बनते हैं।"

यक्ष: "वह कौन है, जो जन्म और मरण के बंधन से मुक्त है?"

युधिष्ठिर: "जो आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता है, वह जन्म और मरण के बंधन से मुक्त है।"

युधिष्ठिर के उत्तरों से संतुष्ट होकर, यक्ष ने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया। वह यक्ष वास्तव में धर्मराज यमराज थे, जिन्होंने युधिष्ठिर की परीक्षा लेने के लिए यह रूप धारण किया था। यमराज ने युधिष्ठिर से कहा:-"हे युधिष्ठिर, तुमने मेरे सभी प्रश्नों का सही उत्तर दिया है। मैं तुम्हारे एक भाई को जीवनदान देता हूँ। बोलो, तुम्हारे किस भाई को मैं जीवित करूँ?"

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया:"हे यक्ष, हम दो माताओं की संतान हैं। भीम, अर्जुन और मैं कुंती माता के पुत्र हैं, जबकि नकुल और सहदेव माद्री माता के पुत्र हैं। जहाँ माता कुंती का एक पुत्र जीवित है, वहीं माता माद्री के एक

पुत्र को जीवित रहना चाहिए। अतः मैं नकुल को जीवित करने की प्रार्थना करता हूँ।"

यमराज ने युधिष्ठिर के इस उत्तर से प्रसन्न होकर, नकुल को जीवित किया और सभी भाइयों को पुनः जीवनदान दिया। इसके बाद, यमराज ने युधिष्ठिर को आशीर्वाद दिया और कहा:"हे युधिष्ठिर, तुम धर्म के सच्चे ज्ञाता हो। तुम्हारे उत्तरों से मैं अत्यंत संतुष्ट हूँ। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम पांडवों के साथ सुखी जीवन व्यतीत करो।"

सीख:-यक्ष और युधिष्ठिर के इस संवाद से कई महत्वपूर्ण शिक्षाएँ मिलती हैं:

धैर्य और विवेक: युधिष्ठिर ने यक्ष के प्रश्नों का उत्तर धैर्य और विवेक से दिया,जिससे उन्होंने अपने भाइयों की जान बचाई। सत्य और धर्म: युधिष्ठिर के उत्तर सत्य और धर्म के प्रति उनकी निष्ठा को दर्शाते हैं।

नैतिकता की महत्ता: इस संवाद से यह स्पष्ट होता है कि नैतिकता और धर्म का पालन जीवन के सर्वोत्तम मार्ग हैं।

परिवार के प्रति निष्ठा: युधिष्ठिर ने माद्री माता के पुत्र नकुल को जीवित करने की प्रार्थना की, जो उनके परिवार के प्रति उनकी निष्ठा को दर्शाता है।

आध्यात्मिक ज्ञान: युधिष्ठिर के उत्तर जीवन के गूढ़ प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करते हैं, जो आध्यात्मिक ज्ञान की महत्ता को दर्शाते हैं।

यह कथा आज भी हमें जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक पहलुओं को समझने में सहायक है। युधिष्ठिर का यह संवाद हमें यह सिखाता है कि जीवन में कठिनाइयाँ आएँगी, लेकिन सत्य, धर्म और विवेक के साथ हम किसी भी समस्या का समाधान पा सकते हैं।

समीक्षाएं

यह किताब नवीन कुमार नवीन के द्वारा रचित है इस किताब की भूमिका और लेखक की मंशा को बताती है- इसमें लेखक ने "परछाइयां", महाभारत के गुमनाम योद्धाओं (कथा संग्रह) को महाभारत के उनअल्प चर्चित,योद्धाओं एवं नायकों को समर्पित किया है ,जिन्होंने अपने कुल,साहस,त्याग और निष्ठा के साथ युद्ध भूमि में अमृत प्राप्त की थी

इस पुस्तक के सर्जन के पीछे लेखक की व्यक्तिगत प्रेरणाओं के स्पष्ट रूप से झलकता है, उनके दादाजी रामकृपाल जी, शिक्षक एवं माता-पिता और परिवार जनों का प्रेरक मार्गदर्शन-जिन्होंने उन्हें धर्म-संस्कृति और साहित्य की गहराई सिखाई,यह उनके प्रति लेखक की श्रद्धांजलि है

इस किताब में लेखक यह बताता है कि महाभारत केवल पांडवों-कौरवों या श्री कृष्ण की ही कथा नहीं है अपितु इसमें अनेक कम प्रसिद्ध योद्धा व स्त्री पात्र भी हैं,जो कहानी समय के साथ भुला दी गई हैं और लेखक का उद्देश्य आज की पीढ़ी को अनदेखे नायकों से परिचित कराना है, अंत में मेरा विश्वास है कि नवीन कुमार नवीन,अपने प्रेरणादायक कथाओं से पाठकों मन में नयी ऊर्जा और साहस का संचार करेगा एवं उनके चरित्र चित्रण में प्रमुख भूमिका निभाएगा

रोहित श्रीवास्तव,बिहार ज्यूडिशल सर्विस,अररिया

नवीन कुमार नवीन की पुस्तक परछाइयाँ महाभारत के उन गुमनाम पात्रों को सामने लाती है, जिनका योगदान अक्सर इतिहास की रोशनी से छूट जाता है। भाषा सहज और सरल है, जिससे यह पुस्तक सभी वर्गों के पाठकों के लिए पठनीय हो जाती है। इसमें वीरता एवं मानवीय संवेदनाओं का जीवंत प्रस्तुतीकरण है।लेखक को इस अनूठे साहित्यिक प्रयास के लिए हार्दिक बधाई एवं उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएँ।

दिलीप कुमार,सहायक निदेशक,जिला सामाजिक सुरक्षा,अररिया

परछाइयाँ एक अनोखा प्रयास है, जो महाभारत के कम चर्चित योद्धाओं की गाथा को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती है। लेखक ने कठिन विषय को भी इतनी सरलता से लिखा है कि हर पाठक आसानी से जुड़ पाता है। इस पुस्तक को पढ़ते हुए लगता है कि हम समय यात्रा कर उन अदृश्य नायकों से मिल रहे हों।

लेखक को इस सार्थक कृति के लिए हार्दिक बधाई और भविष्य में और भी उत्तम लेखन की शुभकामनाएँ।

-शम्भू कुमार रजक,सहायक निदेशक,बाल संरक्षण पदाधिकारी,अररिया

प्रस्तुत रचना अपने आप में शानदार है, महाभारत महाकाव्य में अग्रणी भूमिका निभाने वाले बड़े-बड़े पात्र के परछाईं में छुप जाने वाले अन्य महत्वपूर्ण पात्र को उजागर करने का सार्थक प्रयास किया गया है जो सराहनीय है। प्रसिद्ध पात्र कर्ण के सामने विकर्ण विलुप्त प्राय जैसा ही है। इसी प्रकार शल्य, दुशाला, इरावन, अनिरुद्ध, सुतसोम जैसे पात्रों को प्रसिद्धि के साथ पहचान देने का भरसक प्रयास प्रशंसनीय है। मुझे आशा है यह रचना अपने स्वयं की सफलता सिद्ध करेगी इस हेतु रचनाकार को मेरी अनन्त शुभकामनाएं है।

सुबोध कुमार
सहायक निदेशक,अल्पसंख्यक कल्याण अररिया

आपकी पुस्तक "परछाइयाँ "एक गहन संवेदनशीलता और यथार्थ पर आधारित रचना है, जो पाठक के हृदय को सीधे स्पर्श करती है। इस कृति में महाभारत के गुमनाम योद्धाओं की उलझनों, संघर्षों और मानवीय संवेदनाओं को सहजता से प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक का संपादन भी आकर्षक और सटीक है, जिससे पढ़ने का अनुभव सहज और रोचक बनता है। यह एक ऐसी कृति है, जो समय के साथ भी अपनी प्रासंगिकता बनाए रखेगी।मै इसे समाज के प्रत्येक संवेदनशील पाठक के लिए उपयोगी और प्रेरणादायक मानती हैं।

हेना नकवी,लेखिका

नवीन जी की पुस्तक परछाइयाँ -महाभारत के गुमनाम योद्धाओं की कथा एक अद्भुत साहित्यिक प्रयास है, जिसमें उन्होंने गहराई से ऐतिहासिक तथ्यों और मानवीय संवेदनाओं का सुंदर समन्वय प्रस्तुत किया है। इस कृति में लेखक ने महाभारत के ऐसे योद्धाओं की जीवनी पर प्रकाश डाला है, जिनके संघर्ष, बलिदान और वीरता को इतिहास के मुख्य पृष्ठ पर उजागर नहीं किया गया।

लेखक की भाषा सरल, प्रवाही और मार्मिक है, जिससे हर कहानी सहजता से पाठक के हृदय में उतर जाती है। प्रत्येक पात्र के मनोविज्ञान को बड़े बारीकी से उकेरा गया है, जिससे उनका संघर्ष और पीड़ा यथार्थ रूप में प्रस्तुत होती है। नवीन जी को इस प्रेरणादायक कृति के लिए हार्दिक बधाई।

-डॉ सुमेंदु मुख़र्जी,प्रख्यात चिकित्सक,समस्तीपुर

नवीन, तुम्हारी किताब परछाइयाँ पढ़कर गर्व और आत्मीयता दोनों की अनुभूति हुई। बचपन के दिनों से तुम्हें जानता हूँ और हमेशा से तुम्हारे भीतर गहरी संवेदनाएँ और सीखने-लिखने का जुनून देखा है। महाभारत के इकलव्य, घटोत्कच और अनिरुद्ध जैसे गुमनाम योद्धाओं को इतनी सादगी और सहजता से सामने

लाना एक बड़ा काम है। तुम्हारी भाषा सरल है, लेकिन उसमें भावों की गहराई भी है, जो सीधे दिल को छूती है।

यह पुस्तक न सिर्फ साहित्यिक योगदान है, बल्कि हमारे समय और समाज को भी सोचने का अवसर देती है। मुझे विश्वास है कि यह पाठकों को लंबे समय तक याद रहेगी।

तुम्हें इस उपलब्धि पर हार्दिक बधाई और भविष्य के लिए ढेर सारी शुभकामनाएँ।

सत्यजित नारायण सिंह,उपनिदेशक,जनसम्पर्क,कला संस्कृति विभाग,भारत सरकार

परछाइयाँ पढ़ते हुए लगा कि लेखक ने न केवल घटोत्कच और हिडिम्बा जैसे पात्रों को जीवित किया है, बल्कि उषा और अनिरुद्ध की कथा को भी संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया है।

कहानियों की भाषा सरल है, जो विद्यार्थियों और शिक्षकों दोनों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है।इतिहास और मानवीय मूल्य इस पुस्तक में सुंदर ढंग से मिलते हैं।

यह रचना युवा पीढ़ी को अपने अतीत से जोड़ने में सहायक होगी।लेखक को इस अनोखे प्रयास के लिए बधाई और भविष्य की सफलता की शुभकामनाएँ।

उत्तम प्रसाद ,जिला कार्यक्रम पदाधिकारी,पीएमपीवाई वैशाली

नवीन द्वारा रचित पुस्तक परछाइयाँ एक प्रेरणादायक और महत्वपूर्ण रचना है, जो महाभारत के उन वीरों को समर्पित है, जिनका योगदान इतिहास के मुख्य पृष्ठ पर उजागर नहीं हुआ। यह केवल ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं, बल्कि एक सामाजिक दायित्व का प्रतीक भी है।

नवीन को इस अमूल्य प्रयास के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ देते हैं।

-**ललन यादव,प्रख्यात समाजसेवी एवं राजनीतिज्ञ**

नवीन कुमार नवीन की पुस्तक परछाइयाँ पढ़कर मुझे बहुत खुशी हुई।महाभारत के गुमनाम योद्धाओं की कहानियों को इतने सहज और सरल ढंग से सामने लाना सचमुच सराहनीय है।यह पुस्तक युवाओं को अपने इतिहास और परंपरा से जोड़ने का कार्य करेगी।पढ़ते समय ऐसा लगा मानो हम उन योद्धाओं के साथ खड़े हों।

लेखक का यह प्रयास समाज और साहित्य दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण है।मैं उन्हें इस उपलब्धि पर बधाई देता हूँ और उज्ज्वल भविष्य की शुभकामना करता हूँ।

वरूणेष विजय
राष्ट्रीय अध्यक्ष, सवर्ण प्रकोष्ठ,
हिन्दुस्तानी अवाम मोर्चा (सेकुलर)

नवीन जी की पुस्तक "परछाइयाँ" न केवल एक साहित्यिक रचना है, बल्कि इतिहास के अनछुए पन्नों को जीवंत करने का एक सार्थक प्रयास भी है। उन्होंने उन पात्रों को शब्दों के माध्यम से सम्मान दिया है जो महाभारत में तो थे, पर इतिहास में छूट गए। बचपन से ही नवीन जी में गहरी सोच और भावनात्मक संवेदना रही है, उनकी लेखनी में अध्ययन, अनुशासन और आत्मीयता का सम्मिश्रण है। मैं उन्हें इस उल्लेखनीय रचना के लिए हार्दिक बधाई और भविष्य के लिए अनंत शुभकामनाएँ देता हूँ।

-राकेश राज,बीजेपी जिला प्रोटोकॉल पदाधिकारी सह दरभंगा जिला ओबीसी मोर्चा प्रभारी,सह जिला नागरिक परिषद समस्तीपुर

शब्द पढ़कर ऐसा लगा जैसे कि कोई परछाईं में व्यथित है और व्याकुल है, जैसे कहना चाह रहा हो कि मैं प्रतिबिंब या छाया नहीं सत्य हूं।वह जो छिप गया।नवीन जी ने महाभारत के उन पात्रों की उस परछाईं को अतीत के दर्पण से खींच कर धरातल पर लाने का भागीरथ प्रयास किया है।जब आप इस पुस्तक को पढ़ेंगे तो आपको एहसास होगायह उनकी कल्पनाशीलता नहीं यह उनका गहन अध्ययन है।

महाभारत की किताब तीन प्रकार से है।पहला महाभारत आदि पर्व से स्वर्गारोहण पर्व तक है।दूसरी किताब को हरिवंश पुराण कहते हैं।मैंने जब परछाईंयां के संदर्भों को ढूंढा तोवह इन दोनों ही पुस्तकों से मेल खाते थे।अतः नवीन जी के शब्द और वाक्य अकाट्य हैं।प्राय लोग विजेता की ही तारीफ करते हैं। परंतु नवनीत जी ने उनको भी चुना,जो सही थे पर अधर्म के पक्ष में लड़े।जो ग़लत थे ,पर धर्म के पक्ष में थे।उनकी कलम महाभारत के उन अंधेरों को रोशन करती है जैसे अंधेरी रात में दामिनी कड़के और और शिवलिंग दिख जाए।महाबली घटोत्कच से शुरू होकर यह कथाएं अश्वत्थामा,कृतवर्मा, शिखंडी आदि की मनोदशा को ऐसे प्रस्तुत करती है कि पाठक को उनसे सहानुभूति हो जाती है।

इतिहास तो विजेता लिखवाया करता है तो फिर पराजित के मनोभाव को कौन लिखे?

श्रीकृष्ण मेरे आराध्य हैं जो काल बनकर पृथ्वी का भार हल्का करने आए थे तो उन्होंने पहले असुरों को स्वयं मारा। अर्जुन भीम को वनवास भेजने का प्रबंध किया और करोड़ों राक्षसों को उनके हाथों मरवाया।नारायणी सेना और पांडव सेना में भी बहुत से राक्षस थे।उनको भीष्म द्रोण कर्ण शल्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा के हाथों मरवाया।बहुत से देवताओं ने भी नारायण की सेवा के नाम पर अवतार लेकर पृथ्वी पर अवतार ले लिया था और राक्षस उनसे मरे नहीं तो उनको भी पहुंचाने का प्रबंध करना था।श्रीकृष्ण ने अपने आने के पूर्व ही सब व्यवस्था कर दी थी।द्रोण द्रुपद की शत्रुता,पांडु को शाप और मृत्यु, गंगा को शाप इसी का आधार लेकर प्रभु ने लीला रची और युद्ध के बाद भी उन्होंने गांधारी की पीड़ा द्वारा यादवकुल

के उद्धार का प्रबंध करवा दिया।बाली(जरा व्याध)के प्रतिशोध और भक्ति दोनों का सम्मान करते हुए उन्होंने उसके बाण को ही अपने धाम जाने का साधन बनाया। श्रीकृष्ण का हृदय आज भी जगन्नाथ पुरी में बाली के वंशजों द्वारा संरक्षित और पूजित है।

श्रीकृष्ण कृपा से नवीन जी आपके समक्ष बड़े ही परिश्रम से यह कथाएं लेकर आयें हैं। जिन्हें पढ़कर गर्व की अनुभूति होती है।जय श्री कृष्णा।

-सत्यम सिन्हा, **Manager**,**(Mechanical, Infrastructure, Utilities)**

JBF RAK LLC(A Subsidiary of Investment and Development Office Ras Al Khaimah Government)Al Hamra Al Jazeera,Ras Al Khaimah,**United Arab Emirates**

यह किताब सच्चाई की उजागर करती है, महाभारत सिर्फ कौरव और पांडवों की कहानी नहीं है, ब्लकि उन सारे गुमनाम योद्धाओं कि हैं जिनका महत्पूर्ण योगदान महाभारत के युद्ध में रहा है इस किताब के लेखक श्री नवीन कुमार जी का अनेक धन्यवाद जिनकी लेखनी के जरिए इतनी महत्पूर्ण जानकारी मिली जो शायद कभी नहीं मिल पाती।

स्नेह के साथ - Ranju Jha,Teacher,Dwarka,Delhi

नवीन जी की पुस्तक परछाइयाँ बहुत ही सरल और दिल को छू लेने वाली रचना है। इसमें इकलव्य, घटोत्कच और अनिरुद्ध जैसे गुमनाम योद्धाओं की कहानियाँ बड़ी सहजता से बताई गई हैं। पढ़ते समय लगता है जैसे हम खुद उन पात्रों के साथ जंगल में घूम रहे हों। लेखक ने उनकी वीरता के साथ-साथ उनके अंदर की पीड़ा और संघर्ष को बहुत ही सजीव तरीके से प्रस्तुत किया है। भाषा भी बहुत सरल और समझने में आसान है। यह किताब हमें यह सिखाती है कि असली वीरता दिखावे में नहीं, बलिदान और निष्ठा में होती है। हर कहानी में एक सीख छुपी हुई है, जो हमें सोचने पर मजबूर कर देती है। मैंने इसे बड़े मन से पढ़ा।

मैं उनको इस किताब के लिए धन्यवाद और भविष्य के लिए शुभकामनाएँ देती हूँ।

अलका प्रकाश,सहायक प्रबंधक योजना ,DRCC,पूर्णिया

हमारी मित्रता का सिलसिला बचपन से चला आ रहा है, और यह मेरी सौभाग्य की बात है कि मैं आपके इस अनमोल प्रयास की समीक्षा कर रहा हूँ। परछाइयाँ एक ऐसी कृति है, जिसने महाभारत के उन न छपे हुए योद्धाओं की कहानी को बड़े संवेदनशील और सरल शब्दों में प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक उन लोगों के लिए भी पठनीय है, जो महाभारत को एक नए दृष्टिकोण से समझना चाहते हैं। आपके लेखन में हर पंक्ति में गहराई और मार्मिकता है, जो पाठकों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ती है। समकालीन साहित्य में यह एक महत्वपूर्ण योगदान साबित होगी। इसके माध्यम से भारतीय वीरों की अद्भुत गाथा हमेशा जीवित रहेगी। मित्र, को मेरी ओर से हृदय से बधाई।

Dr Lalit Kumar Ghosh *Goldmedalist
Principal,R S B Inter school, Samastipur

बाल्यकाल से मित्रता के गहरे बंधन ने हमारे विचारों को एक-दूसरे से जोड़ रखा है। परछाइयाँ,केवल युद्ध-कथा नहीं, बल्कि उन वीरों की मानवीय संवेदनाओं, संघर्षों और बलिदानों की आत्मकथा प्रतीत होती है , आपकी लेखनी ने मेरे मन को और भी प्रेरित किया है। परछाइयाँ की प्रत्येक पंक्ति में छुपा अनुभव और प्रेरणा हर पाठक के लिए अनिवार्य रूप से पढ़ने योग्य है। इस कार्य के लिए सादर बधाई और हार्दिक शुभकामनाएँ।

Saket Bhardwaj,

Head-BusinessDevelopment&StrategicPartnerships with a US MNC

नवीन की किताब परछाइयाँ पढ़ना मेरे लिए सिर्फ़ एक साहित्यिक अनुभव नहीं, बल्कि दोस्ती की यादों का ताज़ा होना भी है।

भाषा सीधी-सादी है, लेकिन हर शब्द में गहराई और अपनापन है।यह पुस्तक केवल महाभारत की परछाइयों को उजागर नहीं करती, बल्कि लेखक के हृदय की सच्चाई और संवेदनशीलता को भी सामने रखती है।मुझे गर्व है कि मेरा सबसे करीबी मित्र आज साहित्य जगत में अपनी अलग पहचान बना रहा है।

नवीन को इस उपलब्धि पर हार्दिक बधाई और भविष्य की हर सफलता के लिए शुभकामनाएँ।

प्रवीण कुमार,प्रख्यात व्यवसायी एवं घनिष्ठ मित्र

महाकाव्य-महाभारत, जो अपने आप में ही संपूर्ण है,उसके बारे में सभी जानते हैं पर उसके अंदर की धर्म एवं नीति से अपने पीढ़ी को परिचित करवाने का दायित्व, जो बखूबी अपने कंधों पर लिया है-वह नवीन, हमारे लिए धन्यवाद के पात्र हैं,इस उभरते हुए लेखक व बचपन के दोस्त से, सिर्फ उन गुमनाम चरित्रों से केवल परिचित ही नहीं करवाया,बल्कि उनके चरित्र की गहराइयों में झांककर धर्म-अधर्म के बीच के अंदर के मानवत,त्याग और कर्तव्य से भी परिचित करवाया है,इस कथा संग्रह में भानुमति ,उत्तरा की भावनाएं ,हमें आगे सीखने में काफी मदद करती है, नवीन के लेखनी और आगे बढ़े इन्ही शुभकामनाओं के साथ

-अपर्णा विश्वास, असिस्टेंट टीचर, दमदम कोलकाता

जो कौम अपने इतिहास को नहीं जानती, समय के रेत के खाई में दफन हो जाती है, हां,कुछ ऐसे लेखक,जो उस मूल्यवान हीरों को जनमानस के समक्ष लाते रहे हैं

साहब संत कबीर की एक चौपाई साक्षी है कि "लिके लिके सब चले,लिके चले कपूत, लीक छोड़ अनलीक चले, शायर, सिंह, सपूत " तो ऐसे ही है हमारे नवीन बाबू जो सरकारी काम में रहते भी अपने पैनी कलम से, ऐसे-ऐसे महापुरुषों को खोज कर जनमानस के समक्ष लाए हैं। महाभारत के सभी जग जाहिर पात्रों को प्राय लोग जानते हैं पर कुछ ऐसे पात्र भी हैं जिसे लेखक जानबूझकर जनमानस के निगाहों से ओझल कर देते रहे हैं,पर नवीन बाबू वैसे पात्र को अपनी खोजी चिंतन से हमारे समक्ष उजागर किए हैं,प्रशंसा के पात्र हैं। नवीन बाबू,आप ऐसे ही अपनी कलम से छिपे हीरो को सामने लाते रहिए, मेरी शुभकामना है ।

90 वर्षीय-जनार्दन दास "पारखी",

सेवानिवृत शिक्षक, **बिहार राज्य संयोजक शिक्षक प्रकोष्ठ**

भारत स्वाभिमान न्यास,**हरिद्वार**,**अध्यक्ष**,**फणीश्वर नाथ रेणु वरिष्ठ नागरिक संगठन**, **फारबिसगंज**, **अररिया**

नवीन भैया की किताब "परछाइयाँ" पढ़कर गर्व हुआ। उन्होंने महाभारत के उन गुमनाम योद्धाओं को आवाज़ दी है जिनकी वीरता समय की धूल में छिप गई थी। उनकी लेखनी में गहराई, संवेदना और सच्चाई झलकती है। यह पुस्तक उनके विचारों की रोशनी है। उन्हें दिल से बधाई और शुभकामनाएँ।

निभा,संतोष इन्टर कॉलेज ,रांची

महाभारत-एक ऐसा महासागर, जिसके तट पर खड़े होकर हम बार-बार वही लहरें देखते हैं-कृष्ण का उपदेश, अर्जुन का संशय, भीष्म का व्रत, द्रौपदी का आक्रोश। परंतु उस महासागर की गहराइयों में ऐसे असंख्य मोती भी छिपे हैं, जिनकी चमक अब तक हमारी दृष्टि से ओझल रही है। वे पात्र, जिनकी आवाज़ें धीमी थीं, जिनकी कहानियाँ अधूरी रह गईं, और जिनकी पीड़ा मौन में विलीन हो गई-वे ही इस पुस्तक की आत्मा हैं।

यह पुस्तक मेरे मित्र प्रिय नवीन के अथक प्रयास से उन अनकहे चेहरों को शब्द देने का प्रयास है। जब हम उनकी दृष्टि से महाभारत को देखते हैं, तो हमें युद्ध केवल कुरुक्षेत्र में नहीं, अपने भीतर भी होता हुआ दिखाई देता है-मन और मस्तिष्क के बीच, इच्छाओं और कर्तव्य के बीच, सत्य और सुविधाओं के बीच।

श्री इन्द्रजीत कुमार

Senior Lab Technician Jlnmch, **Bhagalpur**

हम अगर बहुत दुखी है और अपने दुखों का कोई निवारण खोज रहे है है तोभागवत गीता जो कि हमारा धार्मिक किताब उसके हमारे सारे दुखों का निवारण है लेकिन आपको भागवत गीता का सही से अध्ययन करना होगाआपकी किताब का हर शीर्षक अपने आप में अमूल्य है और ज्ञानवर्धक है अपने अपना अनुभव और अपने माता पिता के द्वारा दिए गए शिक्षा का पूरी तरह निचोड़ इस पुस्तक में लिखा है ।आप एक अच्छे इंसान के साथ अच्छे लेखक भी है

नाम : रविन्द्र खत्री
शिक्षक सह समाजसेवी

श्री नवीन कुमार नवीन की पुस्तक "परछाइयाँ: महाभारत के गुमनाम योद्धाओं की कथा" एक गंभीर, शोधपरक और संवेदनशील साहित्यिक प्रयास है। लेखक ने महाभारत के उन पात्रों को केंद्र में रखा है जिन्हें इतिहास ने जाने-अनजाने हाशिये पर छोड़ दिया था। कथाओं की भाषा सरल है और भावनात्मक गहराई लिए हुए है, जो पाठक को न सिर्फ अंत तक बाँधे रखेगी बल्कि बहुत सारे अनसुलझे पहलुओं पर से भी पर्दा उठाने में आसानी होगी।

यह पुस्तक केवल पौराणिक पुनर्कथन नहीं बल्कि मानवीय मूल्यों, कर्तव्यों और त्याग का सुंदर दस्तावेज़ भी है। एक पूर्व सहकर्मी के रूप में जिस अनुशासन और दृष्टि को मैंने नवीन जी में देखा, वही परिपक्वता उनके लेखन में भी स्पष्ट दिखाई देती है।

इस उत्कृष्ट कृति के लिए उन्हें बहुत- बहुत हार्दिक बधाई और उज्ज्वल साहित्यिक भविष्य की शुभकामनाएँ।

डॉ ऋचा गार्गी,

जिला परियोजना प्रबन्धक, जीविका, दरभंगा